www.thearyasamaj.org

VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2015 TO 31.12.2017)

६५, १२ मार्च–2017

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

www.thearyasamaj.org

संस्थापक–सम्पादक :

स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:

प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

उप–सम्पादक :

डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

www.thearyasamaj.org

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
श्री कृष्णचन्द्र टवाणी	२०७४ वें सम्वतसर के शुभ दिन पर यही हो संकल्प हमारा	कविता	२
श्री कर्मबीर सिंह सिहाग	वर्तमान काल में श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता	लेख	३
महात्मा चैतन्यमुनि	मुनि बनने की दिशा में	लेख	५
डॉ० रितू बाला	श्लेषालङ्कार का बाध्य-बाधकभाव	लेख	१०
श्री विनोद चन्द्र पाण्डेय	बाल-मनोविज्ञान और बाल-साहित्य	लेख	१७
डॉ० अनिल शर्मा	प्राचीन गुरुकुल तथा आधुनिक विद्यालय	लेख	२०
श्री ताराचन्द आहूजा	बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग	लेख	२३
डॉ० विजयप्रकाश त्रिपाठी	दीर्घ आयु जीवन जीने की सोचें	लेख	२६
श्री रामशरण युयुत्सु	योग: विज्ञान और मनोविज्ञान	लेख	२९
सुश्री आरती शर्मा	रघुवंश में पर्यावरण-चेतना	लेख	३२
श्री शशि कुमार	बृहत्त्रयीकालीन शिक्षाप्रणाली	लेख	३६
सुश्री शालिनी देवी	विवेकानन्दचरितामृत महाकाव्य में नायक	लेख	३८
श्री तरसेम कुमार	रोगोत्पत्ति में मानसिक भावों का कर्तृत्व	लेख	४१
श्री सन्तोष दत्त लेखवार	पुराणों में वर्णित पुरुषार्थ-चतुष्टय	लेख	४३
	संस्थान-समाचार		४७
	विविध-समाचार		४८

www.thearyasamaj.org

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६५ } होश्यारपुर, फाल्गुन २०७३; मार्च २०१७ { संख्या १२

रूपं रूपं वयो-वयः
संरभ्यैनं परिष्वजे।
यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु
संस्राव्येण हविषा जुहोमि।।
(अथर्व. १९.१.३)

इस (जीवन-पोषक) (यज्ञं) यज्ञ का (चतस्रः दिशो) सब दिशाओं में (वर्धयन्तु) विस्तार हो। मैं खूब (संस्राव्येण) धारावाहिनी (हविषा) आहुति से इसे (जुहोमि) सम्पन्न करता हूं। मैं अपने (रूपं रूपं) पूर्णरूप (और) (वयो-वयः) पूर्ण जीवन के स्थिर लाभ के लिए इस (यज्ञ) का पूर्णतया (परिष्वजे) आश्रय लेता हूं।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

www.thearyasamaj.org

२०७४ वें सम्वतसर के शुभ दिन पर यही हो संकल्प हमारा

श्री कृष्णचन्द्र टवाणी

नव सम्वतसर के शुभ दिन पर यही हो संकल्प हमारा।
नव संवत्सर की उषा किरण नई चेतना लाई है।
उदित हुआ साहस का सूरज अनुपम आभा छाई है।
उमड़ पड़ा उमंगों का सागर प्रेम नदी बह आई है।
मिटे परस्पर द्वेष कुटिलता यही हो पैगाम हमारा।

नव सम्वतसर के शुभ दिन पर यही हो संकल्प हमारा।
संघर्षों की घड़ियों में भी कदम हमारे बढ़ते जाएँ।
जीवन की सरिता लहरावे मन बगिया के सुमन खिलाएँ।
स्वार्थ भावना लिप्सा त्यागे दुष्कर्मों को दूर भगाएँ।
भारतीय संस्कृति को अपनाएँ यही हो लक्ष्य हमारा।

नव सम्वतसर के शुभ दिन पर यही हो संकल्प हमारा।
कहीं कोई बेकार रहे ना निर्धनता का भार रहे ना।
सबको समान अधिकार मिले भूखा नंगा रहे कोई ना।
कटुता का अनुराग जगे ना आतंकों की भरमार रहे ना।
नववर्ष सबको मंगलमय हो यही है संकल्प हमारा।
नव सम्वतसर के शुभ दिन पर यही हो संकल्प हमारा।

प्रधान संपादक "अध्यात्म अमृत" मदनगंज-किशनगढ़ (राज.) ३०५८०१
मो: ०९२५२९८८२२१

www.thearyasamaj.org

वर्तमान काल में श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता

श्री कर्मबीर सिंह सिहाग

श्रीमद्भगवद्गीता केवल भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की ही धरोहर नहीं है, अपितु अपनी अद्वितीय गुणवत्ता के कारण विश्वभर में श्रद्धा एवं विश्वास की पात्र पुस्तक है। इसका गौरव सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है। गीता में अर्जुन द्वारा पूछे गए जीवन-मृत्यु, आत्मा की नित्यता-अनित्यता, स्वधर्म एवं कर्त्तव्य आदि से जुड़े हुए शाश्वत एवं चिरन्तन प्रश्न हैं, और उन्हीं का समाधान प्रस्तुत कर देना इस ग्रन्थ को सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक आयाम देता है। गीता हमें सिखाती है कि सभी संघर्षों का सामना करना और उन पर विजय प्राप्त करना ही हमारा नैतिक दायित्व है, हमारा कर्म है। गीता एक ऐसी अकेली पुस्तक है जो पूरी मानवता के लिए है। यह किसी एक धर्म का प्रतिनिधित्व नहीं करती। यह जीवनसंघर्ष के मध्य में खड़े व्यक्ति को प्रेरित करती है कि तू दुर्बलता को त्यागकर आत्मनियमन कर। गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण स्थितप्रज्ञ के माध्यम से निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देते हैं। गीता में स्पष्ट कहा गया है कि जीव का स्वभाव कर्म है तथा कर्म ही मनुष्य के सुख-दुःख का कारण होते हैं। यदि व्यक्ति आसक्तिभाव को छोड़कर कर्म करे तो उसे सफलता व असफलता आदि से जो सुख-दुःख होता है, वह नहीं होगा। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' एक सनातन दिव्य संदेश है। सुकृत कर्मों की परम्परा बनी रहे, निष्काम कर्मों का जीवन में संचार होता रहे तथा दुष्कृत एवं सकाम कार्मों का क्षरण हो, यही गीता का मानवमात्र को संदेश है। कर्मयोग कहता है कि कर्मों की ममता एवं आसक्ति का त्याग करने से समाज का सन्तुलन बना रहता है। कर्मयोग हमें अन्याय सहकर चुपचाप बैठने को नहीं कहता, वह तो समाज एवं राष्ट्र के हित के लिए कहता है - 'युध्यस्व'। गीता की कर्मयोग की यह शिक्षा आज समाज को नया रूप प्रदान कर सकती है। अतः समाज में कर्मयोगियों की महती आवश्यकता है। गीता के समाजदर्शन में न केवल मनुष्य अपितु विश्व एक अन्तरंगता के सूत्र में बंधा हुआ है। गीता का कर्मसंदेश

www.thearyasamaj.org

श्री कर्मबीर सिंह सिहाग

परस्पर प्रेम तथा सहयोग में सम्बन्ध जोड़ता हुआ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को चरितार्थ करता है। गीता में प्रतिपादित किया गया है कि यह कर्म ज्ञान में समाप्त होते हैं और ज्ञानाग्नि से पापों को दग्ध कर देना चाहिए। इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कर्मयोग के द्वारा शुद्ध अन्तःकरण वाला व्यक्ति अपने-आप आत्मा में पा लेता है। ज्ञानप्रधान व्यक्ति बुद्धि से काम करता है, किन्तु बुद्धि से कार्य करने पर भी जब अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होता तो वह उद्विग्न और विचलित होता है। ऐसे ज्ञानप्रधान व्यक्तियों के लिए गीता ज्ञानयोग का प्रतिपादन करती है। वस्तुतः गीता का यह ज्ञानयोग समाज के लिए परम अनुकरणीय है, क्योंकि समाज में जितने भी पापकर्म होते हैं, लड़ाई-झगड़े होते हैं, वे सब अज्ञान के कारण ही होते हैं। जब व्यक्ति के ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं तो स्वस्थ समाज का निर्माण होने में देर नहीं लगती। इस प्रकार गीता की दृष्टि अत्यन्त व्यापक है। गीता मानव समाज के लिए कर्म का निर्धारण करती है, ज्ञानदृष्टि का निर्देश करती है तथा ज्ञान और कर्म के साथ भक्ति को भी जोड़ती है। भक्तियोग में भक्त सांसारिक व्यक्ति अथवा पदार्थ की अपेक्षा ईश्वर के प्रति समर्पणभाव रखता है। जब भक्त ईश्वर के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हो जाता है तो उसका योग और क्षेम ईश्वर वहन करते हैं और भक्त इस दृढ़ विश्वास के साथ कि मेरी सभी प्रकार की चिन्ता ईश्वर करते हैं, प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रहता है। दुःख तथा प्रतिकूल परिस्थितियां उसे विचलित नहीं करती हैं। क्योंकि जब व्यक्ति सभी प्राणियों में ईश्वर की सत्ता अनुभव करेगा तो वह सभी को एक समान मान देगा। इस प्रकार के दर्शन में समाज में भेदभाव, कलह, हिंसा, ऊंच-नीच की भावना के लिए स्थान नहीं होगा, बल्कि सबके प्रति समानता का भाव आ जाएगा। इसलिए समाज में दिव्य गुणों का प्रावधान होगा तथा समाज ऊर्ध्वगति को प्राप्त करेगा। गीता व्यक्ति की सभी प्रकार की दुर्बलताओं को दूर करते हुए आत्मबल और प्रभुबल से सम्पन्न करती है। व्यक्ति के उत्थान से ही समाज का उत्थान हो सकता है तथा समाज में श्री, विजय, ऐश्वर्य और न्याय का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। गीता जीवन जीने की कला और सार्थकता का बोध कराती है। विश्व इतिहास में गीता का उपदेश एक अद्भुत तथा अनूठी घटना है। यह संसार को शान्ति, मानव-कल्याण तथा मैत्री का अमर संदेश देती है। गीता जैसा उच्च, व्यावहारिक उपयोगी ज्ञान संसार में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है।

असिस्टैंट प्रोफेसर (संस्कृत) राजकीय महाविद्यालय, हाँसी (हरियाणा) मो: ९४६६२४६१५७

www.thearyasamaj.org

मुनि बनने की दिशा में

महात्मा चैतन्यमुनि

वेदानुसार (ऋ० १०-१३६-३ से ५) मुनि बनने के लिए व्यक्ति को मननशील, आत्मसंयमी तथा प्राण-साधना करने वाला होना चाहिए। इन सूत्रों को अपनाने से वह स्व-स्वरूप को पहचानकर अपने लोक-परलोक को संवार सकता है। वेद प्रतिपादित इन सूत्रों पर थोड़ा विचार करते हैं-

१. मननशीलता- मुनि बनने के लिए व्यक्ति को मननशील होना चाहिए। परमात्मा के साक्षात्कार के बारे में उपनिषद् के ऋषि का कथन है कि सर्वप्रथम व्यक्ति को वेदादि सत्य-शास्त्रों को सुनना चाहिए या उनका अध्ययन करना चाहिए और फिर उस पढ़े और सुने हुए पर मनन-चिन्तन करना चाहिए। मनन और चिन्तन से ही व्यक्ति शंकारहित होकर आध्यात्ममार्ग पर आगे बढ़ सकता है। उसकी डांवाडोल स्थिति में स्थिरता आती है तथा वह पूर्ण समर्पण के साथ योगारूढ़ हो सकता है। संशयभरा मन व्यक्ति को आगे नहीं बढ़ने देता है इसलिए शब्द प्रमाण को साथ लेकर चलना ही उत्तम है। इस शब्द प्रमाण का आश्रय लेकर ही उपासक पूर्णरूप से श्रद्धालु बन जाता है तथा तभी वह ईश्वर-प्रणिधान का अनुगमन कर सकता है। इसीलिए उस परम तत्त्व को जानने के लिए महामना याज्ञवल्क्य जी कहते हैं- **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो............** अर्थात् साक्षात्कार के लिए श्रवण करना, उस सुने हुए पर मनन करना और फिर उसे कार्यान्वित करना अनिवार्य बताया है। आचार्य कामन्दक अपने नीतिशास्त्र में तत्वज्ञान प्राप्ति के लिए बुद्धि के सात गुणों का वर्णन करते हुए लिखते हैं-

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहापोहार्थविज्ञाने तत्वज्ञानं च धीगुणाः।।
(४-६२)

यहां पर 'सुश्रूषा' का भाव है सुनने की इच्छा होना। 'श्रवण' अर्थात् विद्वान् की बात को श्रोता ध्यान से सुने। उस सुने हुए को 'ऊहापोह' अर्थात् तर्क और प्रतितर्क के बाद 'ग्रहण' करके उसे 'धारण' अर्थात् कार्यान्वित

www.thearyasamaj.org

करे। इससे ही 'विज्ञान' अर्थात् विशेष-ज्ञान का साक्षात्कार होता है और उसके बाद व्यक्ति बुद्धि के अन्तिम गुण 'तत्वज्ञान' को प्राप्त होता है। तत्वज्ञान का भाव यही है कि किसी बात के सार को आत्मसात् कर लेना। मुनि बनने के प्रसंग में आत्मसाक्षात्कार कर लेना ही तत्व-ज्ञान है।

२. आत्मसंयम- मुनि बनने के लिए व्यक्ति का आत्मसंयमी होना बहुत जरूरी है। बृहदारण्यकोपनिषद् (४-४-२२) का ऋषि कहता है-...... **वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेनैतमेव विदित्वा मुनिर्भवति।।** यहां पर व्यक्ति को मुनि बनने के लिए प्रथम सूत्र-'वेदस्वाध्याय' बताया गया है। विना वेदस्वाध्याय के व्यक्ति सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है। दूसरा सूत्र है- 'यज्ञ'। यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है तथा इसे ब्रह्माण्ड की नाभि अर्थात् केन्द्रबिन्दू भी कहा है क्योंकि इसी से व्यक्ति के भीतर 'इदं न मम' की भावना का समावेश होता है। ऐसी भावना वाला व्यक्ति संसार की समस्त सम्पदाओं को परमात्मा का मानकर त्यागभाव से भोगता है तथा दूसरों के हित के लिए सदा समर्पण भाव से तत्पर रहता है..... यही मुनि होना है।

मुनि बनने के लिए अगला सूत्र दिया गया है- 'दान'। जिस व्यक्ति ने यज्ञ की भावना को आत्मसात् कर लिया है वह निश्चित रूप से परोपकार के लिए अपना सर्वस्व न्योच्छावर करने के लिए तैयार रहता है। दान की महिमा सभी ग्रन्थों और महापुरुषों ने मुक्तकण्ठ से की है। दान केवल धन का ही नहीं होता है बल्कि जिसके पास जो भी वस्तु है, समाज और देश की उन्नति के लिए उसे समर्पण कर देना ही दान है। धन का दान तो दिया ही जा सकता है मगर अन्न का, समय का, विद्या का, शरीर का और प्रत्येक सुकृत्य का भी दान दिया जा सकता है। दान देने से व्यक्ति मुनि बनता है तथा उसका यश भी फैलता है। मुनि बनने का अगला सूत्र बताया गया है- 'उपवास'। उपवास का साधारण-सा अर्थ यह किया जाता है कि भोजन न करना। मगर यदि गहराई से चिन्तन करें तो उपवास का अर्थ है परमात्मा के समीप बैठना। इसलिए मुनि को परमात्मा की उपासना करनी चाहिए। यही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

उपनिषद् के अनुसार जो ऐसा मुनि बन जाता है- वह पुत्रैषणा, लोकैषणा और वित्तैषणा से रहित हो जाता है तथा वह पाप में लिप्त नहीं होता है, शांत मन वाला हो जाता है, विषयों से

www.thearyasamaj.org

उपराम होकर इन्द्रिय-संयमी हो जाता है। सुख-दु:ख, हानि-लाभादि को सहने वाला और समाहित वृत्ति वाला होकर अपनी आत्मा से उस ब्रह्म को देखता है और उसको उस आत्मा में अनुभव करता है। इस प्रकार की स्थिति 'तप' के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। तप को आजकल कुछ तथाकथित लोगों ने पाखण्ड बना दिया है मगर तप का सही अर्थ हमें जानना चाहिए। आचार्य चाणक्य जी कहते हैं कि अपनी इन्द्रियों का निग्रह करना ही तप है अर्थात् हम अपनी कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों पर संयम करें तब ही सच्चे तपस्वी कहला सकते हैं। महर्षि पतंजलि जी के अनुसार द्वन्द्वों को सहन करना ही तप है। हानि-लाभ, सुख-दु:ख, यश-अपयश तथा सर्दी-गर्मी आदि जितने भी द्वन्द्व हैं उन्हें दृढ़ता के साथ सहन करना चाहिए। यही तप है तथा यही मुनि की पहचान भी है।

३. प्राण-साधना- मुनि बनने के लिए प्राण-साधना का अनुष्ठान करना नितान्त अनिवार्य है। ऋग्वेद (१-१९-१) में परमात्मा व्यक्ति को तीन महत्वपूर्ण निर्देश देते हुए कहते हैं कि वह यज्ञमय जीवन वाला बने, ज्ञान का पान करे और प्राण साधना करे। तैत्ति०उप० (ब्र० ३-१.२) का ऋषि कहता है- जो देव, मनुष्य और पशु हैं वे प्राणों के आधार पर ही जीवन धारण करते हैं। प्राण ही प्राणियों की आयु है,अतः प्राण ही सम्पूर्ण आयु कहा गया है। जो प्राणरूपी ब्रह्म की साधना करते हैं वे सम्पूर्ण आयु को प्राप्त होते हैं।

प्राण की शक्ति बढ़ाने और उसे अनुशासित करने की विधि को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम ही प्राणसाधना का मूलाधार है। इस प्राणायाम द्वारा ही हम प्राणमय-कोष की सिद्धि करके साधना के पथ पर द्रुतगति से आगे बढ़ सकते हैं। महर्षि पतंजलि जी ने आसन के बाद प्राणायाम को स्थान दिया है। यह तकनीक भारतीय मनीषियों की एक विशेष देन है। प्राणायाम की सिद्धि के बाद व्यक्ति की इन्द्रियाँ स्वतः ही अन्तर्मुखी हो जाती हैं। यही नहीं इससे अपार शारीरिक शक्ति भी प्राप्त होती है। इससे शरीर में शुद्ध रक्त का संचरण होता है। प्राणायाम का अभ्यास न करने से हमारे फेफड़ों का बहुत-सा हिस्सा रोगग्रस्त हो जाता है तथा इसके विपरीत प्राणायाम करने से फेफड़ों की सक्रियता बढ़ती है। प्राणायाम से व्यक्ति के भीतर शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल का संचार होता है...... साहस, शक्ति और उत्साह का संचार होता

www.thearyasamaj.org

है। उसके भीतर दु:खों को सहने की अपार शक्ति प्राप्त हो जाती है। इससे मानसिक सक्षमता मिलती है तथा विद्यार्थी इसके अभ्यास से अपनी स्मरण- शक्ति बढ़ा सकते हैं। मनु महाराज कहते हैं कि जैसे अग्नि में तपाने और गलाने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं वैसे ही प्राणों के निग्रह से मन आदि इन्द्रियों के दोष भस्मीभूत हो जाते हैं। इसी सम्बन्ध में उनका कथन है कि ब्रह्मवित् व्यक्ति या संन्यासी के द्वारा जो विधि के अनुसार प्रणव अर्थात् ओंकारपूर्वक और भु: भव: स्व: आदि सप्त व्याहृतियों के जप सहित तीनों प्रकार के बाह्य, आभ्यन्तर, स्तंभक प्राणायाम अथवा न्यून से न्यून तीन प्राणायाम किए जाते हैं.... वह उसका परम तप होता है। योगदर्शन मे लिखा है- तत: क्षीयते प्रकाशावरणम् (२-५२) अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से आत्मा के ज्ञान को ढकने वाला अज्ञानतारूपी आवरण नष्ट हो जाता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी इस सम्बन्ध में लिखते हैं- 'जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है वैसे प्राण को बल से बाहर फैंक कर बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे। जब बाहर निकालना चाहे, तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच के वायु को बाहर फैंक दे। जब तक मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रखें, तब तक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण अधिक बाहर ठहर सकता है। जब घबराहट हो तब धीरे-धीरे भीतर वायु को लेके फिर भी वैसे ही करता जाए, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो और मन में (ओम्) इसका जप करता जाए। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है..... एक 'बाह्य विषय' अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना। दूसरा 'आभ्यन्तर' अर्थात् जितना प्राण रोका जाए उतना रोक कर, तीसरा 'स्तंभ वृत्ति' अर्थात् एक ही बार जहां का तहां प्राण को यथाशक्ति रोक देना। चौथा 'बाह्याभ्यान्तराक्षेपी' अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उससे विरुद्ध न निकलने देने के लिए बाहर से भीतर ले और जब बाहर से भीतर आने लगे, तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोका जाए। ऐसे एक-दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन होते हैं। बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्मरूप हो जाती है, जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती

www.thearyasamaj.org

है। इससे मनुष्य-शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर, बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा.... (तीसरा समुल्लास), प्राणायाम आत्मा, मन तथा शरीर की स्वस्थता एवं सबलता प्राप्त करने के लिए यह एक अत्यधिक उपयोगी प्रक्रिया है। प्राणायाम के समय दो विशेष सावधानियों का भी ध्यान रखना चाहिए। पहली यह कि प्राणायाम सदा खाली पेट ही करना चाहिए, दूसरा ऐसे स्थान पर करना चाहिए जहां धूल और धूआं आदि न हो। मुनि बनने के लिए व्यक्ति को मननशील होना चाहिए, आत्मसंयमी होना चाहिए तथा प्राण-साधना करके स्वयं को परमात्मा के सान्निध्य में स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। इससे उसकी अवस्था जीवनमुक्त जैसी हो जाती है। इस प्रकार पूर्णज्ञानी, कृतात्मा, वीतराग, प्रशान्त और धीर आत्मज्ञानी, योगी तथा ऋषि उस सर्वव्यापक परमात्मा को प्राप्त कर पूर्ण आनन्द में डूबे रहते हैं।

वैदिक वशिष्ठ आश्रम, महादेव, सुन्दरनगर- १७४४०१ (हि०प्र०)

www.thearyasamaj.org

श्लेषालङ्कार का बाध्य-बाधकभाव

डॉ० रितू बाला

केवल भारतीय आचार्य हीं नहीं अपितु विदेशी विद्वान् भी भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत तथा अन्य वस्तुओं का मूल वेद मानते हैं। वेद में ऋग्वेद सर्वप्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। सभी विद्याओं का आधार होने के कारण काव्यशास्त्र का मूल भी वेद को मानने में कोई आश्चर्य नहीं, फलतः वेद में अलङ्कारों का स्वरूप भी देखने को मिलता है। सम्पूर्ण वैदिक-वाङ्मय उपमा[1], रूपक[2], श्लेष[3], अतिशयोक्ति[4] आदि अलङ्कारों से भरा पड़ा है। यहां अन्य अलङ्कारों के विषय में न लिखते हुए केवल श्लेषालङ्कार के विषय में लिखा जा रहा है। काव्य के क्षेत्र में कालिदास प्रभृति कवियों ने बड़े आदर के साथ इसको स्वीकार करते हुए इसकी महिमा का वर्णन किया है। श्रीहर्ष ने तो नैषधीयचरितम् में श्लेषरूपी दण्ड के बल पर पञ्चनली रूपी पताका फहराकर कवि-सम्प्रदाय में अपनी विद्वत्ता की पहचान बनाई है।[5] कवि ने अपना वैदुष्य दिखाते हुए प्रत्येक पद में चारों देवताओं तथा नल का ऐसा वर्णन किया कि जिस के सामने सभी नतमस्तक होते हैं।

आचार्य वामन[6] ने श्लेष को काव्य के गुणों के रूप में मान्यता प्रदान करते हुए-श्लेष प्रसाद समता समाधि पदसौकुमार्य अर्थ-व्यक्ति उदारता, ओज कान्ति और समाधि इन शब्द और अर्थ के गुणों में इसको पढ़ा है।

श्लेष- आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में उपमा आदि अलङ्कारों के विषय में तो लिखा पर श्लेष का उल्लेख नहीं किया। इतना अवश्य है कि संघात को स्वीकार करते हुए श्लेषालङ्कार का मार्ग प्रशस्त किया है।[7] आचार्य दण्डी ने अनेकार्थक पद से जहाँ एक से अधिक अर्थों की प्रतीति हो वहां

१. अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्ताुरुगिव सनये धनानाम्। जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः।। ऋग्वेद, १.१२४.७

२. द्वासुपर्णा सयुजा, वही- १०.१६४.१०

३. यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति। वही, १०.१६४.२१

४. चत्वारि शृंङ्गा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश।। वही, ४.५८.३

५. नैषधीयचरतिम्-१३.३४

६. काव्यादर्श, १.४१

७. यत्राल्पैरक्षरैः शिलष्टैः विचित्रमुपवर्ण्यते, तमायक्षसंघातं विशाललक्षणसंज्ञितम्। नाटयशास्त्र।

www.thearyasamaj.org

श्लेषालङ्कार स्वीकार करते हुए उसके दो भेद भी स्वीकार किए है।[८] भामह ने गुण, क्रिया और नाम से सिद्ध किए जाने वाले उपमान से उपमेय की तद्रूपता को श्लेषालङ्कार कहा है।[९] किन्तु श्लेषालङ्कार शब्दालङ्कार है या अर्थालङ्कार इस विषय में वे मौन रहे। मम्मट इस विषय में संकेत करते हुए लिखते हैं कि जहां कोई शब्द अर्थभेद के कारण भिन्न-२ होने पर भी एक उच्चारण के द्वारा शिलष्ट हो जाते हैं, वहां श्लेषालङ्कार होता है और वह वर्ण, पद, लिङ्ग, भाषा, प्रकृति, विभक्ति तथा वचन के भेद से आठ प्रकार का है।[१०] विश्वनाथ ने इस विषय में अपना मत प्रकट करते हुए लिखते हैं कि- जहां शब्द भिन्न-२ होने पर भी (जतुकाष्ठन्याय या एक वृन्तगतफलद्वयन्याय से) शिलष्ट (परस्पर मिले हुए) होकर अनेक अर्थों की अभिव्यक्ति करें वहां श्लेषालङ्कार होता है।[११] विश्वनाथ ने भी श्लेष के ८ भेद स्वीकार करते हैं।[१२] । उदाहरण के रूप में निम्नलिखित पद्य प्रस्तुत करते हैं-

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभूत् न पतिष्यतः करसहस्रमपि।।[१३]

प्रस्तुत पद्य में जो विधौ शब्द है, वह विधि तथा विधु शब्द के सप्तमी एकवचन का रूप है। विधि के दो अर्थ होते हैं विधि=भाग्य तथा विधु=चन्द्रमा। जब भाग्य विपरीत हो या किसी का चन्द्रमा विपरीत हो जाय तो व्यक्ति के सभी प्रयत्न विफल हो जाते हैं उसको किसी भी प्रकार की सफलता प्राप्त नहीं होती इस प्रकार इस पद्य के दो अर्थ किए जाते हैं। यहां भिन्न प्रयत्न से उच्चारित विधि या विधु वर्णों का (शिलष्टविधौ) एक ही प्रयत्न से उच्चारित होने से भिन्न-भिन्न अर्थपरक होने से श्लेषालङ्कार है।

श्लेषालङ्कार के भेद- पहले श्लेषालङ्कार को आठ प्रकार का मानते हुए पुनः उसके (क) अभङ्ग (ख) सभङ्ग (ग) सभङ्ग -अभङ्ग रूप से तीन भेद किए गए हैं।[१३] श्लेष के विषय में सबसे बड़ा प्रश्न उपस्थित होता है कि इसकी गणना शब्दालङ्कारों में की जाए या अर्थालङ्कारों में;। इस दिशा में अलङ्कारिकों में मतभेद है।

रुद्रट इस स्थिति में सभङ्गश्लेष को शब्दालङ्कार तथा अभङ्गश्लेष को अर्थालङ्कार मानते हैं। उनका मानना है कि आश्रयाश्रयिभाव-सम्बन्ध मात्र से जो जिसके आश्रय हो वहीं उसका अलंकार मानना चाहिए। जैसे सभङ्ग में श्लेष शब्दाश्रित है, अतः ऐसे स्थान में शब्दालङ्कार और अभङ्ग-श्लेष अर्थाश्रित होता

---

८. शिलष्टमिष्टमनेकार्थमेकरूपान्वितं वचः। तदभिन्नपदं भिन्नपदप्रायमिति द्विधा।। काव्यादर्श-२.३१०

९. काव्यालंकार-भामह- ३.१४।

१०. काव्यप्रकाश-९.८४

११. शिलष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते। साहित्यदर्पण- १०.११

१२. अष्टधा च सः ।वही, - १०.११

१३. वही, पृ.- २८२

www.thearyasamaj.org

है, अतः वहाँ अर्थालङ्कार मानना चाहिए।[१४] परन्तु मम्मट तथा विश्वनाथ आदि उत्तरवर्ती आचार्य रुद्रट के इस सिद्धान्त को उचित नहीं समझते और वे श्लेष के सभङ्ग तथा अभङ्ग दोनों ही भेदों को शब्द-श्लेष के अन्तर्गत रखते हैं। वे इसका मापदण्ड अन्वय-व्यतिरेक के सिद्धान्त को मानते हुए कहते हैं कि- जिसके रहने पर ज़ो अलंकार रहे और जिसके हटने से अलंकार भी हट जाए उसकी प्रधानता होने से उसको ही प्रधानता दी जानी चाहिए। जैसे- जहां शब्द रहने पर अलङ्कार रहे और शब्द के बदलने पर अलङ्कार भी समाप्त हो जाय वहां शब्द-परिवृत्ति-असहत्व होने के कारण शब्दालङ्कार समझना चाहिए।[१५] जैसे-

येन ध्वस्तमनोभवेन बलिजित्कायः पुरास्त्रीकृतः,
पश्चोदवृत्तभुजङ्गहारवलयो गङ्गां च योऽधारयत्।
यस्याहुः शशिमच्छिरोहर इति स्तुत्यं च नामामराः,
पायात्स स्वयमन्धकक्षयकरस्त्वां सर्वदोमाधवः।।[१६]

प्रस्तुत पद्य में सर्वदोमाधवः यह शब्द अन्त में है। इसको दो प्रकार से पढा जा सकता है- सर्वदः माधवः- अर्थात् सब कुछ देने वाला, माधवः अर्थात् कृष्ण, दूसरी तरह से पढा जायेगा सर्वदा-उमा धव उमा+धव= पार्वती जी के पति अर्थात् भगवान् शंकर। इस पद्य से सभङ्ग तथा अभङ्ग दोनों ही प्रकार का श्लेष शब्दश्लेष ही है। किन्तु जहां शब्द का परिवर्तन करने पर भी अलंकार बना रहे, वहां अर्थालङ्कार ही होता है। जैसे-

स्तोकेनोन्नतिमायाति स्तोकेनायात्यधोगतिम्।
अहो सुसदृशी वृत्तिः तुलाकोटेः खलस्य च।।[१७]

इस पद्य में जो स्तोक शब्द है उसके स्थान पर उसके पर्यायवाची अल्पेन या न्यूनेन रखने पर भी अर्थ में कोई भिन्नता नहीं होती और दो अर्थों की प्रतीति भी हो रही है। अतः शब्द के बिना तोड़े ही दो अर्थ होने से श्लेषालङ्कार की कोई क्षति नहीं होगी। ऐसी स्थिति में यह अर्थालङ्कार ही माना जायेगा।

बाध्यबाधकभाव- अब दूसरा प्रश्न है कि जब श्लेषालङ्कार किसी दूसरे अलंकार के मूल में होता है तब वह दूसरे अलंकार का बाधक होता है या उस दूसरे अलंकार से बाध्य होता है। इस विषय में भी आचार्यों में तीन प्रकार की अवधारणा पाई गई है। कुछ आचार्य श्लेष को दूसरे अलंकार की प्रतिभा का हेतु मानकर श्लेष को उनका बाधक मानते हैं। परञ्च

---

१४. अत्र केचिदाहुः (रुद्रटादय) सभङ्गश्लेष एव शब्दश्लेषविषयः यत्रोदात्तादिस्वरभेदादिभिभिप्रयत्नोच्चार्यत्वेन भिन्नयोः शब्दयोर्जतुकाऽन्यायेन श्लेषः अभङ्गस्त्वर्थश्लेष एव। साहित्यदर्पण- पृ.- २८५

१५. इह दोषगुणालङ्काराणां शब्दार्थगतत्वेन यो विभागः सोऽन्वयव्योतिरेकाभ्यामेव व्यवतिष्ठते। काव्यप्रकाश-९.१२० की वृत्तिः

१६. साहित्यदर्पण- १०.१२ (श्लोक)

१७. साहित्यदर्पण- १०.१२ (पद्य) अथवा द्रष्टव्य-काव्यप्रकाश-९.३७९

www.thearyasamaj.org

डॉ० रितू बाला

कतिपय विद्वान् श्लेष को ही उनसे बाध्य मानते है तथा कुछ-एक स्वतन्त्र या दोनों का संकर स्वीकार करते हैं।

बाधक- उद्भट आदि आचार्य श्लेष को अलंकारान्तर का बाधक मानते हैं। उनका मानना है कि जहां श्लेष अलंकार होता है, वहां कोई न कोई अन्य अलंकार अवश्य होता है। वह कभी भी स्वतन्त्र नहीं होता क्योंकि वह सभी सादृश्यमूलक अलंकारों के मूल में विद्यमान है। इसलिए वह उनका बाधक ही होगा।[१८]

उनका तर्क है कि श्लेष के लक्षणानुसार श्लेष में या तो दो प्राकरणिक अथवा दो अप्राकरणिक अर्थों की एक अर्थ के साथ प्रतीति हुआ करती है ऐसे स्थान पर तुल्ययोगिता भी हुआ करती है।[१९]

'येन ध्वस्तमनोभवेन' यह जो पद्य श्लेष आदि उदाहरण के रूप में दिया गया है।[२०] रूय्यक आदि आचार्य इसको भिन्न रूप से लेते हुए कहते हैं कि- इसमें दोनों ही अर्थ प्राकरणिक हैं। जिनमें एक शिवपरक तथा दूसरा विष्णुपरक है। सर्वदोमाधवः में सर्वदा+ उमाधवः (शङ्कर) तथा सर्वदः माधवः (विष्णु) इस प्रकार सभङ्ग ही श्लेष है। किन्तु रूय्यक आदि इस पद्य में श्लेष द्वारा तुल्ययोगिता का भी आभास मानतें हैं।[२१] उनके मत में यहां श्लेष तुल्ययोगिता की प्रतिमा का हेतु होने के कारण इसमें तुल्ययोगिता की गौणता तथा श्लेष की प्रधानता है। अतः यहां श्लेष, तुल्ययोगिता अलंकार का बाधक है।[२२] रूय्यक का कहना है कि गुण, क्रिया या शब्द-साम्य से भी जहां उपमा मानी जाती है, वहां भी श्लेष की प्रधानता होती है न कि उपमा की। जैसे-

सकलकलं पुरम् एतज्जातं सम्प्रति सुधांशु-बिम्बमिव। यह नगर इस समय चन्द्रबिम्ब-सा है। यहां सकलकलम्-सकलाभिः कलाभिः युक्तम्= सम्पूर्ण कलाओं से युक्त (चन्द्रमा)। यहां उपमा का तो आभासमात्र है, अगर यहां सभंग श्लेष न होता तो चन्द्रमा के साथ समानता का प्रश्न ही पैदा न होता। ऐसी स्थिति में उपमा का होना तो दूर की बात होती है।[२३] इसी प्रकार-

स्वयं च पल्लवाताम्रभास्वत्करविराजिता।
प्रभातसन्ध्येवास्वाप-फल-लब्धेहितप्रदा।।[२४]

इसमें उद्भट के अनुसार पूर्वार्द्ध में अर्थ अभङ्ग-श्लेष तथा उत्तरार्ध में शब्द सभङ्ग-श्लेष है। अतः श्लेष ही उपमा की प्रतिमा का

---

१८. एष च नाप्राप्तेष्वलंकारान्तरेष्वारभ्यमाणस्तद् बाधकत्वेन तत्प्रतिभोत्पत्तिहेतुरिति। (अलङ्कारसर्वस्वम्, श्लेषालङ्कार. पृ. ३६०)

१९. साहित्यदर्पण-१०.४७ २०. वही- १०.१२ (उदाहरणम्) २१. अलंकारसर्वस्व- पृ. ३६०

२२. तत्पृष्ठे चालंकारान्तराणाम् उत्थानमिति नास्ति विविक्तोऽस्य विषयः। अत एवालंकारान्तराणां बाधितत्वात् प्रतिभानमात्रेणावस्थानम्। (वही- पृ.- ३६०)

२३. अलंकारसर्वस्व- पृ.- ३६० २४. काव्यप्रकाश- ९.३७८

www.thearyasamaj.org

कारण है। यहां श्लेष की प्रधानता होने से श्लेष उपमा का बाधक है।

आनन्दवर्धनाचार्य ने भी ध्वन्यालोक में एतद्विषयक चर्चा में श्लेष को उपमा, व्यतिरेक का बाधक माना है। उनकी मान्यता है कि जहां दोनों का अर्थ वाच्य हो वहां श्लेष होता है।[२५]

बाध्य- श्लेषालङ्कार दूसरे अलंकारों के साथ रहने पर भी उसका बाधक कदापि नहीं होता अपितु उनसे बाधित ही होता है। यह कथन है मम्मट इत्यादि उन आचार्यों का, जो उद्भट आदि आचार्यों के मत से सहमत नहीं हैं। श्लेष के साथ सर्वदा दूसरे अलंकार रहते ही हैं। श्लेष का लक्षण है-

श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।[२६]

जहां श्लिष्ट पदों से (अभिधा द्वारा) अनेक अर्थों का अभिधान हो वहां श्लेष अलंकार होता है और वह प्रथम ८ प्रकार का होता है। पुनः (क) सभङ्ग (ख) अभङ्ग (ग) सभङ्ग-अभङ्ग तीनों प्रकार का होता है। और वह श्लेष विविक्त रूप से रहता है। जैसे- येन **ध्वस्तमनोभवेन बलिजित्कायापुरास्त्रीकृतः**। इस पद्य में श्लेष स्वतन्त्र रूप से है। उद्भट इत्यादि आचार्यों ने जो इसमें तुल्ययोगिता अलंकार को भासित माना यह इनकी एतद्विषयक अनभिज्ञता ही समझनी चाहिए। क्योंकि तुल्ययोगिता में दोनों अर्थों के वाच्य होने का नियम नहीं है। वहां सादृश्य गम्य होता है।[२७] जब कि श्लेष में दोनों ही अर्थ अभिधा द्वारा वाच्य होते हैं। यदि माधव और उमाधव इन दोनों में से केवल एक को वाच्य मानेगें तो दूसरा अर्थ व्यङ्ग्य हो जायेगा। इस तरह सर्वत्र श्लेष का नाम ही मिट जायेगा।[२८]

तुल्ययोगिता इसलिए भी यहां नहीं होगी क्योंकि तुल्ययोगिता में एक ही धर्म केवल एक बार अनेक धर्मियों से व्याप्त रहता है।[२९] किन्तु 'येन ध्वस्तमनोभवेन' में पृथक्-पृथक् धर्मियों में पृथक्-२ धर्म हैं। जैसे शिवपक्ष में मनोभव=कामदेव वध तथा विष्णुपक्ष में शकटासुर वध। किसी भी प्रकार यहां एक ही धर्म दोनों (शिव तथा विष्णु) धर्मियों में नहीं दिखाई दे रहा है। यदि दुराग्रहवश हटा लिया जाय कि यहां भी विशेष्यों की आवृत्ति द्वारा बार-२ धर्मियों को उपादान के रूप में मान भी लिया जाय तो ऐसी स्थिति में धर्मों का उपादान भी अनेक बार मानना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में तुल्ययोगिता के लक्षण की यहां अव्याप्ति हो

२५. हवन्यालोक २

२६. साहित्यदर्पणम्- १०.११-१२

२७. औपम्यस्व गम्यत्वे पदार्थगतत्वेन प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां वा समानधर्माभिसम्बन्धे तुल्येयोगिता। अलंकारसर्वस्वम्- सू. २४. तुल्ययोगिता अलङ्कार, पृ. २३६

२८. साहित्यदर्पण- २.१०, अत्र प्रकरणादिनियमाभावात् द्वावप्यर्थौ वाच्यौ, काव्यप्रकाश-पृ० ३४६

२९. वही- १०.१०४

www.thearyasamaj.org

जायेगी, क्योंकि उसमें एक धर्माभिसम्बन्ध:, विशेषण है अर्थात् धर्म एक तथा धर्मी अनेक होने चाहिएं।[३०] इस प्रकार तुल्ययोगिता का यहां होना असम्भव है।

इसके अतिरिक्त यह जो कहा गया कि सकलकलम् में शब्दसाम्य होने से श्लेष उपमा का बाधक है, यही भी ठीक नहीं क्योंकि यहां पर शब्द-साम्य होने पर भी सकलकलं पुरमेतज्जातम् में सभंगश्लेष उपमा की प्रतिभा का कारण नहीं है; अपितु यहां उपमा श्लेष की प्रतिभा का कारण होने से उपमा की ही प्रधानता है।[३१] यदि ऐसे स्थलों पर शब्द-श्लेष को उपमा का बाधक माना जायेगा तो पूर्णोपमा के लिए कोई स्थान नहीं रहेगा।[३२] अगर कहा जाय कि **कमलमिव मुखमनोज्ञमेतत्** इत्यादि में अर्थश्लेष होने से पूर्णोपमा होती ही है। अत: उसका विषयापहार कैसे हो सकता है। उसके लिए कहा जा सकता है कि यदि **सकलकलं** में शब्द श्लेष होने से उपमा नहीं हो सकती तो **कमलमिव मुखमनोज्ञमेतत्** में **सकलकलं** में शब्दश्लेष होने से उपमा नहीं हो सकती तो ऐसी स्थिति में**कमलमिव मुखमनोज्ञमेतत्** में भी अर्थश्लेष को भी उपमा का बाधक क्यों नहीं माना जा सकता। अगर अर्थश्लेष को भी बाधक स्वीकार किया जायेगा तो दोनों की समानता होने से पूर्णोपमा निर्विषय हो जायेगी। शब्द- श्लेष से केवल हम (मम्मट) ही उपमा नहीं मान रहे हैं अपितु प्राचीन आचार्यों ने गुण और क्रिया के साम्य के समान शब्द की समानता में भी उपमा अलंकार माना है।[३३]

मम्मट आदि आचार्यो का कथन है कि उपमा का लक्षण ही साधर्म्यम् उपमा इस प्रकार है। इससे पृथक् लक्षण में साधर्म्यम् के लिए किसी विशेषता को नहीं बताया गया है। अत: जैसे अर्थकृत साधर्म्य (कमलमिव मुखम्) अपेक्षित है वैसे ही शब्दकृत (सकलकलं पुरमेतज्जातम्)[३४] साधर्म्य भी उपमा का प्रयोजक स्वत: सिद्ध है। यदि शब्दगत साधर्म्य उपमा का प्रयोजक नहीं माना जायेगा तो विद्वन्मानसराजहंस (विद्वानों का चित्त ही मानसरोवर है) ऐसे स्थल में रूपक नहीं हो सकेगा क्योंकि यहां शब्द-साम्य ही चित्त और सरोवर की समानता साम्य बनता है। न कि अर्थसाम्य से। जैसे मानस=मन तथा मानस=

३०. पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत्। एक धर्माभिसम्बन्ध: स्यात्तदा तुल्ययोगिता। सा.द.-१०.४८।

३१. न चायमुपमाप्रतिभोत्पत्तिहेतु: श्लेष: अपि तु श्लेषप्रतिभोत्पतिहेतुरुपमा: काव्यप्रकाश-९.१२० की वृत्ति

३२. काव्यप्रकाश, ९.१२० की वृत्ति।

३३. स्फुटमर्थालंकारावेतावुपमासमुच्चयौ किन्तु। आश्रित्य शब्दमात्रं सामान्यमिहापि सम्भवत:।। काव्यप्रकाश-९.१२० की वृत्ति

३४. सकलकलम् इत्यादौ शब्दमात्रसाम्येऽपिसा (उपमा) युक्तैव। काव्यप्रकाश-९.१२० की वृत्ति

www.thearyasamaj.org

मानसरोवर ये दो अर्थ निकलेंगे। यहां मन में मानसरोवर का आरोप ही राजा में हंस का आरोप कर उसको हंस बना भी दिया जाय तो बिना मन=मानसरोवर के वह बैठेगा कहाँ? अत: शब्दसाम्य भी सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोजक है। इसलिए सकलकलं में शब्द-साम्य से ही उपमा है, न कि श्लेष के कारण। इसी प्रकार उद्‌भट इत्यादि आचार्यों द्वारा जो कहा गया कि श्लेष दूसरे अलंकार के बिना नहीं रहता यह भी उचित नहीं। क्योंकि-

देव! त्वमेव पातालमाशानां त्वं निबन्धनम्।
त्वं चामरमरुद्भूमिरेको लोकत्रयात्मक:॥[35]

इत्यादि में श्लेष स्वतन्त्र है।

इसी प्रकार **अबिन्दुसुन्दरी नित्यं गलल्लावण्यबिन्दुका** इत्यादि में विरोध का जनक श्लेष नहीं, अपितु श्लेष का जनक विरोध है। यहां अभाव (बिना बिन्दु के सुन्दरी) भाव (जिससे बिन्दु झर रहे हैं) इस प्रकार आपातत: विरोध है। अत: विरोध परिहार के लिए अबिन्दु=अप्=जल में प्रतिबिम्बित इन्दु के सदृश यह सुन्दरी हैं, ऐसा अर्थ किया जाता है- पहला विरुद्ध अर्थ तो केवल प्रतिभासित ही होता है, ग्राह्य नहीं, अत: यह विरोधाभास ही है।[36] विरोध का परिहार करने के लिए श्लेष आता है। अगर विरोध ही न होगा तो श्लेष ही नहीं आएगा। इसी प्रकार सादृश्यमूलक सभी अलंकारों में समझना चाहिए।

अलंकार रत्नाकार के लेखक शोभाकर मिश्र ने श्लेष की पांच स्थितियाँ स्वीकार की हैं।[37]

(१) स्वतन्त्र भूमिका- जैसे- येन ध्वस्तमनोभवेन इत्यादि में।

(२) अलंकारान्तर सत्ता का प्रतिभसित कारण। जैसे सकलकलं पुरमेतज्जातम् इसमें में।

(३) अप्रधान रूप में। जैसे- कमलमिव मुखं मनोज्ञम् एतत् इस पद्य में।

(४) विरोधात्मक-आभास के रूप में जैसे- अबिन्दुसुन्दरी-इत्यादि में।

(५) अनुप्राणित रूप में- जैसे समासोक्ति इत्यादि अंलकारों में।

अत: कई एक आचार्यों द्वारा विविध पक्षों को प्रस्तुत कर यह निर्णय किया कि- श्लेष अलङ्कार, रूपक, समासोक्ति, विरोध से बाध्य है, बाधक नहीं।

असिस्टेण्ट प्रौफेसर, वी.वी.बी.एस. एण्ड आई. एस,
(पंजाब विश्वविद्यालय पटल) साधु आश्रम, होशियारपुर।

---

३५. वही- ३.१२० काटिका का अन्त: श्लोक-३७९

३६. न च - अबिन्दुसुन्दरी-इत्यादौ विरोधप्रतिभोत्पत्तिहेतु: श्लेषु: अपितु श्लेषुप्रतिभोत्पत्तिहेतु: विरोध:। काव्यप्रकाश- ९.१२० की वृत्ति

३७. अलंकारसर्वस्वम् व्या: डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी- पृ. ३६५

www.thearyasamaj.org

बाल-मनोविज्ञान और बाल-साहित्य

श्री विनोद चन्द्र पाण्डेय

बालमनोविज्ञान का लक्ष्य बालक का सर्वांगीण विकास है पर यह तभी संभव है जब उनके नैतिक और सामाजिक विकास के साथ शारीरिक और मानसिक प्रतिमानों को समझा जाए तथा उनकी आवश्यकताओं, समस्याओं, रुचियों, समायोजन और व्यक्तित्व आदि का ज्ञान भी प्राप्त किया जाए। बाल्यावस्था में दिए गये प्रशिक्षण का प्रभाव उनकी क्षमताओं, रुचियों, इच्छाओं और स्वभाव आदि पर पड़ता है। बालसाहित्य के द्वारा बच्चों के हित एवं कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है। अत: बाल-मनोविज्ञान और बालसाहित्य दोनों बालक के उन्नयन में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। युवावस्था प्रारंभ होने से पूर्व शिशु, बालक और किशोरवय वर्ग के लिए सृजित किए गये साहित्य को समग्र रूप या व्यापक अर्थ में बालसाहित्य कहा जाता है। बालसाहित्य में प्रेम, रिश्ते, सम्बन्ध एवं संवेदनशीलता की गहनता होती है, इनके अभाव में जीवन संचारित और स्तरीय तो हो सकता है लेकिन स्थायित्व और आत्मीयता से परिपूर्ण नहीं।

विकास की विभिन्न अवस्थायें हैं जैसे शैशवावस्था, बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था। सामान्यत: छ: वर्ष की आयु तक शैशवकाल, तत्पश्चात् बारह वर्ष तक ही आयु बाल्यकाल एवं बारह वर्ष के पश्चात् अठारह वर्ष तक की आयु को किशोरकाल कहा जाता है। शिशु इस अवस्था में बोलना और लिखना सीखने लगता है, वह बौद्धिक विकास की ओर अग्रसर होता है तथा उसमें खेलों के प्रति रुचि उत्पन्न होने लगती है। वह जिज्ञासा की सन्तुष्टि चाहता है। उसमें सम्बन्ध को देखने व अर्थ को समझने की क्षमता का विकास होने लगता है साथ ही कल्पना और चिन्तन का विकास प्रारंभ होता है। इस आयुवर्ग के लिए कहानी और कविता मूर्त विषयों पर केन्द्रित होनी चाहिए क्योंकि अमूर्त चिन्तन के योग्य वह नहीं होता है। पशु-पक्षी, पेड़-पौधे एवं दृश्यमान जगत् की वस्तुओं पर आधारित साहित्य, कविता या कहानी के रूप में, उनके उन्नयन में सहायक होगा। पहेलियां भी गीत के माध्यम से सृजित की जा सकती हैं। पंचतंत्र की कहानियां और हितोपदेश आदि में शिशु के लिए विभिन्न कहानियों के माध्यम से प्रचुर सामग्री है। उनके लिए परी या राक्षस आदि की कहानियों के बजाए मनुष्य एवं पशु पक्षियों आदि से सम्बन्धित कहानियों से अवगत होने का अवसर देना चाहिए जिससे कल्पनाशक्ति का

www.thearyasamaj.org

समुचित विकास हो सके।

बाल्यावस्था में सामूहिकता की भावना का विकास होता है। बालक जीवन की वास्तविकता को समझने लगता है। उसमें कल्पनाशक्ति, भाषा की योग्यता, प्रत्यय तथा चारित्रिक और सृजनात्मक आदि का विकास होने लगता है। बाल-कहानियों में बालक की आयु के अनुरूप विचारों का समावेश होने से उसे सन्तुष्टि मिलेगी। वह आत्म-महत्त्व को समझने लगता है। उसमें विभिन्न प्रकार के कौशल का विकास प्रारंभ हो जाता है। उसके प्रत्ययों का विकास सरल से जटिल की ओर होने लगता है जिसमें समाज एवं संस्कृति के नियम, मूल्य और प्रतिमान जुड़ जाते हैं। इस आयु में उनके लिए कहानियां और कविता ऐसी होनी चाहिए जो शिक्षाप्रद हों जैसे लोक-कथाओं द्वारा उनमें अमूर्त चिन्तन, सौन्दर्य-बोध एवं प्रेम की भावना विकसित होती है। नाटक मुख्यरूप से एकांकी नाटक इस आयु में उनके लिए उपयुक्त होंगे क्योंकि नाटक बच्चों की सृजनात्मकता का शिखर है। कविता से बच्चे शब्द और ध्वनि की मनोहारी छटा का रसास्वादन करते हैं क्योंकि इसके द्वारा जनमानस का सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है। इस आयु में बालक मनस्तरंग या काल्पनिक जगत् में विचरण करने लगता है। वैसे भी गीत भावों की भाषा है और विचारों का सशक्त स्रोत भी। बच्चों का नैतिक विकास, नैतिक प्रत्ययों पर निर्भर करता है। लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में नैतिक विकास शीघ्र और अधिक होता है। बच्चों में इस आयु में उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न होने लगती है और सृजनात्मक विकास होने लगता है जिसमें साहस की प्रवृत्ति, जिज्ञासा, आत्मविश्वास, आत्म-अनुशासन, स्वतंत्रता, आकांक्षा का स्तर, आदर्श व लक्ष्य आदि निहित हैं। बालसाहित्य के माध्यम से बच्चों में सौन्दर्यानुभूति और सहिष्णुता का विकास होता है, इसके पठन और श्रवण से उनका चिन्तन क्रियाशील होता है साथ ही स्मरणशक्ति का विकास भी।

अभिभावकों का यह दायित्व है कि बाल- साहित्य से सम्बन्धित पुस्तकों का चयन कर बच्चों को उसके अध्ययन के प्रति प्रेरित करें जिससे उनकी वाणी, चिन्तन और आत्मा का विकास हो और सांस्कृतिक बोध का विस्तार भी। अन्यथा बालसाहित्य के अध्ययन की आदत के विकास के अभाव में उनकी परवर्ती अवस्था में उपयुक्त गुणों का विकास दुष्कर होगा। आदर्श व्यक्तियों के जीवनचरित्र से सम्बन्धित साहित्य के प्रति बच्चों में अध्ययन की आदत डालें क्योंकि शिक्षा शब्दों से मिलती है लेकिन प्रेरणा उदाहरणों से। बालसाहित्य से बाल-हृदय का परिष्कार होता है, वे सूक्ष्म भावात्मक सौन्दर्य और अनुभूतियों को ग्रहण करने लगते हैं विचार एवं बिम्बों के समन्वित रूप को समझने से उनमें नैतिक गुणों का विकास होता है। साहित्य के अध्ययन से ज्ञानवर्धन तो होता ही है साथ ही स्वस्थ

www.thearyasamaj.org

मनोरंजन भी होता है जिससे शरीर और मन में सन्तुलन स्थापित होता है, विवाद एवं तनाव आदि से मुक्ति मिलती है, शक्ति का संग्रह होता है तथा स्वास्थ्य वृद्धि भी होती है। कल्पना साहित्य का एक अनिवार्य अंग है। प्रतिभा के स्वरूप में अर्थ और सृजनात्मकता को जोड़ देने से कल्पना का प्रादुर्भाव होता है। पूर्व बाल्यावस्था में अवास्तविक कल्पनाओं की प्रचुरता होती है, उत्तर बाल्यावस्था में कल्पना व्यावहारिकता पर आधारित होती है। रचनात्मक कल्पना के अन्तर्गत बच्चों में विभेदीकरण की शक्ति, आत्मविश्वास, ज्ञान एवं मानवीय गुणों का विकास होता है जो स्वास्थ्य एवं समायोजन के लिए लाभकारी है।

किशोरावस्था में किशोर में असुरक्षा, उत्सुकता तथा सामाजिक निषेधों के प्रति विद्रोह की भावना प्रबल होती है। वे आदर्श की ओर प्रेरित होते हैं तथा किसी को अपना आदर्श मानकर उसके प्रति पूजा या सम्मान का भाव उनमें जागृत होता है तथा वे उन्हीं के जैसा बनना चाहते हैं। उनमें आत्मचेतना की भावना, प्रभुत्वशीलता, आत्मनियंत्रण, आत्मविश्वास आदि कम या अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं। नेतृत्व की क्षमता उनमें विकसित होती है और वे सामाजिक रीति-रिवाजों, मूल्यों व आदर्शों को समझने लगते हैं। इस आयु में उन्हें नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध और काव्य के अध्ययन के प्रति प्रेरित करना चाहिए। इस आयु वर्ग वालों को सम-सामयिक विषयों से सम्बन्धित निबन्धों, आदर्श जीवनचरित, प्रेरक कहानियां, उद्देश्यपूर्ण उपन्यासों तथा विभिन्न आयामों से परिपूर्ण काव्य आदि का अध्ययन करना चाहिए।

साहित्य के प्रति प्रेरित होने से बच्चों में विचारशीलता आती है जिससे उनकी कोशिकाओं का समूह उत्तेजित होता है, चिन्तन के सकारात्मक स्वरूप का विकास होता है क्योंकि चिन्तन का नकारात्मक स्वरूप तभी होगा जब उनकी भावात्मक प्रतिक्रिया शिथिल हो। बालसाहित्य से बच्चे संस्कृति और नैतिकता की बातों को ग्रहण करते हैं जिससे उनमें सहयोग, सद्भावना, अनुशासन, शिष्टता और नैतिकता के गुणों का विकास होता है। साहित्य में प्रेरक कथाओं का अनन्त भण्डार है। जिससे बच्चों में दृढ़ इच्छाशक्ति, संवेगों का शोधन, आत्मसम्मान जैसे स्थायी भाव का विकास होता है और वे परिवेश के प्रति उत्तम समायोजन स्थापित करते हैं। बाल साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से बच्चों के प्रति मन का रिश्ता बनाकर उनके हृदय को संवारा जा सकता है साथ ही बाल-मनोविज्ञान की विशेषताओं का समावेश साहित्य सृजन में करने से उनमें मानवीय गुण विकसित होगें, उनका चहुँमुखी विकास होगा और वे समाज के उपयोगी घटक बन सकेंगे साथ ही बालसाहित्य के अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति भी होगी।

सी-१०, सेक्टर जे (जागृति विहार), अलीगंज, लखनऊ- २२६०२४ (उ०प्र०)

www.thearyasamaj.org

प्राचीन गुरुकुल तथा आधुनिक विद्यालय

डॉ० अनिल शर्मा

भारतवर्ष अत्यन्त प्राचीनकाल से विद्या का महान् केन्द्र रहा है। भूमण्डल के समस्त मानव इस देश के विद्वान् ब्राह्मणों से न केवल विद्या की वरन् संस्कृति, सदाचार और सभ्यता की भी शिक्षा ग्रहण करने के लिये आते थे-

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

मनु. २.२०

भारतीय महर्षियों ने उत्तम बालक की उत्पत्ति तथा रक्षा के लिये ही गर्भाधान से लेकर चूडाकरण तक शास्त्रीय प्रयत्न बताये हैं, साथ ही इन संस्कारों द्वारा उनकी आयु तथा मेधाशक्ति को भी समृद्ध करने का प्रयास किया जाता था। तदनन्तर पिता द्वारा उपनयन के समय ब्राह्मण बालक को गुरु की सेवा में भेजा जाता था। 'गृ निगरणे' धातु से गुरु शब्द की सिद्धि हुई है, इसके अनुसार जो शास्त्रवाणी का उद्गरण कर सके, प्रवचन-पटु हो, वह गुरु हैं। तत्त्व का बोध कराने में समर्थ वक्ता विद्वान् ही गुरु एवं आचार्यपद का अधिकारी होता है। अतः महर्षियों ने उनको माता-पिता के समान ही आदर दिया है। मनु जी के मतानुसार जो शिष्य का उपनयन करके कल्प एवं रहस्य सहित सम्पूर्ण वेद का उपदेश कर सके, उसे आचार्य कहते हैं-

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते।।

मनु २.१४०

आचार्य गायत्री के उपदेश द्वारा बालक को जो द्वितीय जन्म देते हैं, वहीं यथार्थ जन्म है। गुरु-प्रदत्त वह ज्ञानमय शरीर अजर-अमर है-

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा।।

मनु. २.१४८

शास्त्र ने पिता को भी गुरु कहा है और वह इसलिये कि पिता विधिपूर्वक गर्भाधानादि समस्त संस्कारों को सम्पन्न करता है और अन्न द्वारा संतान का पालन-पोषण करता है। ऐसा करने वाला पिता भी गुरु कहलाने का अधिकारी है-

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि।
सम्भावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते।।

मनु. २.१४२

www.thearyasamaj.org

डॉ० अनिल शर्मा

प्राचीनकाल में जहां कोई विद्वान् आचार्य शिष्यों को विद्या का उपदेश करता था, वह स्थान 'गुरुकुल' कहलाता था। जहां अध्ययन-अध्यापन की परम्परा दीर्घकाल तक चालू रहती थी, वह स्थान 'विद्यापीठ' के नाम से भी पुकारा जाता था। 'समर्थ: पदविधि:' सूत्र के भाष्य में महाभाष्यकार पतंजलि ने अनेक बार 'गुरुकुल' शब्द का उल्लेख किया है। 'श्रितो विष्णुमित्रो गुरुकुलम्' 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' इत्यादि। जहां ऋषिसमुदाय एकत्र होकर शास्त्र या सत्सङ्ग करता हो, वह स्थान 'ऋषिकुल' कहलाता था। नैमिषारण्य ऐसा ही ऋषिकुल था। महाभारत, रामायण तथा विभिन्न पुराणों में अनेक स्थलों पर आश्रमों, गुरुकुलों का उपर्युक्त वर्णन उपलब्ध होता है। इन गुरुकुलों में गरीब तथा राजा-महाराजाओं के लड़के भी समान भाव से रहते और शिक्षा प्राप्त करते थे। प्राचीनकाल में काशी, प्रयाग और पाटलिपुत्र विद्या के केन्द्र रहे हैं। ये सब गंगातट पर हैं। उज्जयिनी में सान्दीपनि का गुरुकुल भी शिप्रा के तट पर सुशोभित था। काश्मीर भी प्राचीनकाल से शारदापीठ रहा है। वहां भी नदियों एवं निर्झरों की कमी नहीं है। गुरुकुलों की भौगोलिक स्थिति एवं छात्रों के आचार-व्यवहार के विवरण के साथ-साथ गुरुकुलों की शिक्षा का लक्ष्य क्या था, यह भी समझना आवश्यक है-

१) छात्रों से दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कराकर उनकी शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक शक्ति को विकसित किया जाता था।

२) उनमें अनुशासन, आज्ञापालन, सेवा, सद्धर्धपरायणता तथा सदाचार-प्रियता का भाव जगाया जाता था।

३) प्रत्येक छात्र को रहस्य, कल्प आदि सहित साङ्ग वेदों, आन्वीक्षिकी आदि चतुर्विध विद्याओं तथा चौंसठ कलाओं का मर्मज्ञ विद्वान् बनाना आदि गुरुकुलों का लक्ष्य था। आस्तिकता, परलोक और पुनर्जन्म पर विश्वास, देवताओं, पितरों तथा गुरुजनों के प्रति श्रद्धा-भक्ति, श्राद्ध आदि सत्कर्मों पर आस्था तथा देश और समाज के हित के लिए आत्मोत्सर्ग की दृढ़ भावना आदि गुरुकुलों की सांस्कृतिक देन थी। वहां से त्यागी, संयमी, ज्ञानी, सदाचारी, काम, क्रोध, लोभ आदि से रहित तथा संतोषी स्नातक निकलते थे।

आधुनिक विद्यालयों की अवस्था इससे सर्वथा विपरीत है। अधिकांश स्कूल, कालेज या विश्वविद्यालय नगरों में हैं और बहुतों में सहशिक्षा का प्रचार है। इनमें संयम, ब्रह्मचर्य और त्याग का पुरातन आदर्श भुलाकर पश्चिम की पद्धति अपनायी गयी है। आज हमारे देश में पश्चिम से आये हुए वादों का इतना प्राबल्य

www.thearyasamaj.org

क्यों है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे शिक्षा-संस्थानों ने नयी उद्‌भावना और नये चिन्तन का काम विदेशों को ही सौंप दिया है। हम वर्तमान में तो कर्तृत्वविहीन हैं ही, अपने अतीत के प्रति भी पूरी उपेक्षा दिखा रहे हैं। मानो हम अपने इतिहास और उसकी पूरी परम्परा से विच्छिन्न हो गये हैं। जिस देश की शिक्षा-संस्थाओं में यह कमजोरी घर कर लेती है और उधार की पूंजी पर काम चलाने की मनोवृत्ति पैदा हो जाती है, उस देश का भविष्य उज्ज्वल नहीं कहा जा सकता।

आज हमारे विद्यार्थियों में शंकराचार्य, गुरुनानकदेव, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द और कबीर आदि की अपेक्षा मार्क्स और एंजिल्स की निष्पत्तियां अधिक व्यापक स्तर पर घर करने लगी हैं। हम इतनी जल्दी अपनी जीवन-विधि और जीवन-आदर्शों को भूल बैठेंगे, इसकी सम्भावना नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में हमसे कहा जाता है कि शिक्षा- संस्थाएं विद्यार्थियों को चरित्रबल क्यों नहीं देतीं ? वे चरित्रबल दें कहां से, जब कि सारा वातावरण ही विशृंङ्खल हो रहा है। आज भारतवर्ष की मुख्य समस्या भ्रष्टाचार कही जाती है। भ्रष्टाचार किसी एक व्यक्ति या वर्ग तक ही सीमित नहीं है, वह सम्पूर्ण देश में फैल गया है। अतः स्पष्ट है कि आधुनिक पाठयक्रम ही इनका दोषी है। जब तक हम मूल को नहीं सुधारते, तब तक शाखाओं का उपचार नहीं हो सकता। मूल को सुधारने के स्थल हैं हमारी शिक्षा-संस्थाएं, माध्यम हैं- हमारे अध्यापक और तैयार की जाने वाली वस्तुएं हैं, हमारी नयी संतति की मनोवृत्ति उनका दृष्टिकोण, उनका जीवन-लक्ष्य। इन सब का संस्कार अत्यावश्यक है, परन्तु यह तभी सम्भव है, जब हम पुनः अपनी अतीत की विधियों और प्रणालियों कीओर दृष्टिपात करेंगे।

प्राचीन शिक्षा-संस्थानों ने हमारे देश को संसार के अन्य राष्ट्रों के सम्मुख कितना ऊँचा पद प्रदान किया था। शताब्दियों तक हमारे आचार्य विदेशों में जाकर ज्ञान-प्रसार करते थे और सहस्रों विद्यार्थी दूर-दूर देशों से आकर हमारी शिक्षा संस्थाओं और विद्यापीठों में अपने जीवन के उच्चतम ध्येयों की सिद्धि करते रहते थे। ये सब बहुत-सी विचारणीय समस्याएँ हैं।

६-बी, ग्रेटर कैलाश, लुधियाना।

www.thearyasamaj.org

बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग

श्री ताराचन्द आहूजा

कैसा विचित्र संयोग है कि भगवान् बुद्ध का जन्म, आत्मबोध और निर्वाण तीनों घटनाएं एक ही दिन घटी हैं और वह दिन है भारतीय पंचाग के बैसाख मास की पूर्णिमा का दिन। बैसाखी, पूर्णिमा पावनता की त्रयी है। इस पुनीत तिथि को ही महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ, आत्मज्ञान अर्थात् बोध हुआ और महापरिनिर्वाण भी इसी दिन ही हुआ। ईसा से ५६३ वर्ष पूर्व कपिलवस्तु के महाराजा शुद्धोदन की धर्मपत्नी महारानी महामायादेवी की कोख से नेपाल की तराई के लुम्बिनी वन में जन्मे सिद्धार्थ ही आगे चलकर बुद्ध कहलाए। इनके जन्म के सात दिन बाद ही इनकी माताश्री का देहान्त हो गया। सिद्धार्थ की मौसी गौतमी ने इनका लालन-पालन किया। सिद्धार्थ ने गुरु विश्वामित्र के पास वेद और उपनिषद् तो पढ़े ही, राज-काज और युद्धविद्या की भी शिक्षा ग्रहण की।

बचपन से ही सिद्धार्थ के मन में करुणा की भावना कूट-कूट कर भरी थी। उनसे किसी भी प्राणी का दु:ख-दर्द नहीं देखा जा सकता था। घुड़दौड़ में जब घोड़े दौड़ते और उनके मुख से झाग निकलने लगता तो सिद्धार्थ उन्हें थका जानकर वहीं रोक देते और जीती हुई बाजी हार जाते। खेल में भी सिद्धार्थ को हार जाना अधिक पसन्द था क्योंकि किसी को हराना और उसे दु:खी होते देखना सिद्धार्थ को गवारा नहीं होता था।

शाक्यवंश में जन्मे सिद्धार्थ का सौलह वर्ष की आयु में दण्डपाणि शाक्य की कन्या यशोधरा के साथ विवाह हुआ। राजा शुद्धोदन ने पुत्र सिद्धार्थ के लिए भोग-विलास का भरपूर प्रबन्ध कर दिया पर संसार के सभी वैभव और ऐश्वर्य उसे अपने मोहपाश में बाँध नहीं सके। उनका मन हर समय सत्य की गहराईयों में उतरने को बेचैन रहता था। एक दिन उचित अवसर देखकर सिद्धार्थ पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल को अर्धरात्रि में सोता हुआ छोड़कर सत्य की खोज में निकल पड़े। वे सात वर्षों तक वन में भटकते रहे। उन्होंने कठोर तप किया और अन्तत: बैसाख पूर्णिमा के दिन बोधगया में बोधिवृक्ष के नीचे उन्हें

www.thearyasamaj.org

बुद्धत्व ज्ञान की प्राप्ति हुई तभी से यह दिन बुद्धपूर्णिमा के रूप में जाना जाता है। आज विश्व में बौद्धधर्म के पचास करोड़ से भी अधिक अनुयायी इस दिन को बड़ी धूम-धाम और हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं। हिन्दु-धर्मावलंबियों के लिए बुद्ध भगवान् विष्णु के नौवें अवतार माने जाते हैं। अत: हिन्दुओं के लिए भी यह दिन अतिशय पावन और पवित्र माना जाता है।

भगवान् बुद्ध कहते हैं कि अति मुख्यत: दो प्रकार की होती है। एक अति है भोग-विलास तथा कामसुख में ऊपर से नीचे तक डूब जाना और दूसरी अति है शरीर को अत्यधिक पीड़ा देकर तपस्या करना। उन्हें दोनों ही मार्ग अच्छे नहीं लगे। अत: उन्होंने एक तीसरा मार्ग मध्यमार्ग के रूप में खोज निकाला। इस मध्यमार्ग को ही बोधि-जनसमुदाय अष्टांगिक मार्ग के रूप में निरूपित करता है। यह मार्ग शान्ति, ज्ञान और निर्वाण प्रदान करने वाला है। अब हम इस अष्टांगिक मार्ग का संक्षेप में निरूपण करेंगे।

प्रथम मार्ग है सम्यक्-दृष्टि। दु:ख का ज्ञान, दु:खोदय का ज्ञान, दु:ख निरोध का ज्ञान और दु:ख निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान। इस आर्य सत्यचतुष्टय को सम्यक् ज्ञानदृष्टि कहते हैं। भगवान् बुद्ध ने कहा है कि चार ध्रुव सत्य हैं- पहला, संसार में दु:ख है, दूसरा, दु:ख का कोई न कोई कारण अवश्य है, तीसरा, दु:ख का निदान है और चौथा, वह निदान है समाधि। जब साधक को इन चार ध्रुव सत्यों का ज्ञान हो जाता है तो वह परम शान्ति को प्राप्त करने योग्य बन जाता है। इसे ही धम्मपद में सम्यक्-दृष्टि कहा गया है।

ज्ञान, शान्ति और निर्वाण का दूसरा मार्ग है सम्यक् संकल्प। संकल्प मुख्यत: तीन प्रकार के होते हैं यथा निष्कर्मता संबंधी संकल्प, अहिंसा संबंधी संकल्प और अद्रोह संबंधी संकल्प। जब कोई साधक इन तीनों संकल्पों पर नियंत्रण कर लेता है तब वह परम शान्ति के मार्ग पर चल पड़ता है।

अष्टांगिक मार्ग का तीसरा सोपान है सम्यक् वचन। असत्य वचन छोड़ना, पिशुन वचन अर्थात् चुगलखोरी का परित्याग करना और कठोर वचन छोड़ना, सम्यक् वचन की कोटि में आता है। सम्यक् वचन से साधक का मन निर्मल और पावन हो जाता है जिससे सत्कर्म करने और परम शान्ति के मार्ग पर चलने का रास्ता बन जाता है।

चौथा मार्ग है सम्यक् कर्मांत। प्राणी-हिंसा से विरक्त होना, बिना दी हुई वस्तु को नहीं लेना और कामोपभोग के मिथ्याचार अर्थात् दुराचार से विरक्त होना ही सम्यक्

www.thearyasamaj.org

कर्मांत है। जब व्यक्ति सत्कर्मों के मार्ग पर चलता हुआ अपना जीवन यापन करता है तो वह भगवान् बुद्ध के अनुसार ज्ञान, शान्ति और निर्वाण को ही प्राप्त होता है।

अष्टांगिक मार्ग का पाँचवा पायदान है सम्यक् आजीव। आजीविका के मिथ्या साधनों को छोड़कर अच्छी-सच्ची और हक-हलाल की आजीविका से जीवन व्यतीत करना ही सम्यक् आजीव है। इस मार्ग में सच्चाई और ईमानदारी को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है।

छठा मार्ग है सम्यक् व्यायाम। अकुशल अधर्म अर्थात् पाप उत्पन्न न होने देने के लिए निश्चय करना, परिश्रम करना, उद्योग करना, चित्त को पकड़ना और रोकना तथा कुशल धर्म अर्थात् सत्यकर्म की उत्पत्ति, स्थिति, विपुलता और परिपूर्णता के लिए उद्योगादि करना ही सम्यक् व्यायाम है। इस मार्ग में धर्म के अवलम्बन और अधर्म के त्याग पर विशेष ध्यान दिया गया है।

अष्टांगिक मार्ग का सातवां सोपान है सम्यक् स्मृति। अशुचि, जरा, मृत्यु आदि दैहिक धर्मों का अनुभव करना तथा उद्योगशील अनुभव ज्ञानयुक्त होकर, लोभी और मानसिक संताप को छोड़कर जगत् में विचरना ही सम्यक् स्मृति है। इसमें सद्विचार और सदाचार पर विशेष जोर दिया गया है। शील को भी जीवन का महत्वपूर्ण अंग स्वीकार किया गया है।

आठवाँ और अन्तिम मार्ग है सम्यक् समाधि। कुशल धर्मों अर्थात् सन्मनोवृत्तियों में समाधान रखना ही सम्यक् समाधि है। समाधि अष्टांगिक मार्ग की अन्तिम अवस्था है जिसमें मनुष्य को अपने शरीर और मन का कोई भान नहीं रहता। वह अपनी आत्मा को परमात्मा में पूर्णतया लीन कर देता है। समाधि की अवस्था में पहुँचने पर साधक के लिए परम शान्ति के अतिरिक्त कुछ भी पाना शेष नहीं रहता।

आज हजारों साल बाद भी सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, शान्ति और मैत्री जैसे मानवीय मूल्यों पर आधारित भगवान् गौतम बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग का जीवन-दर्शन पूरी तरह से प्रासंगिक बना हुआ है और उनके द्वारा निर्देशित और निरूपित इस मार्ग का अवलम्बन लेकर करोड़ों लोग ज्ञान, शान्ति और निर्वाण के मार्ग पर आरूढ हैं।

निदेशक-धार्मिक पुस्तकालय, ४/११४, एस.एफ.एस., अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर-३०२०२०फोन: ०१४१-२३९५७०३, मो. ९६८००९५०७३

www.thearyasamaj.org

दीर्घ आयु जीवन जीने की सोचें

डॉ० विजयप्रकाश त्रिपाठी

आज के समय में यदि कोई व्यक्ति सौ वर्ष या उससे अधिक जीवन जी लेता है तो उसे आश्चर्य की दृष्टि से देखा जाता है। परन्तु पहले के समय में ऐसा होना एक सामान्य बात थी। इसका मूल कारण व्यक्ति का खान-पान, जीवनशैली और वातावरण था, जो मनुष्य के शरीर को स्वस्थ, सुदृढ़ व रोगमुक्त रखने में सहायक था। आयुर्वेद में 'जीवेम शरदः शतम्' की उक्ति के माध्यम से मनुष्य के लिए सौ वर्ष तक जीवन जीने की कामना की गई है, लेकिन वर्तमान समय की जीवनशैली में ऐसा हो पाना बहुत ही कठिन है।

आज हम लोगों का वातावरण बहुत प्रदूषित है, वायु में हानिकारक तत्त्व घुल-मिल गए हैं, पानी में हानिकारक जहरीला वैक्टीरिया-वायरस है, भोजन वाले अन्न में कीटनाशक जैसे विषैले पदार्थों की निम्न मात्रा मिश्रित है। इस प्रकार का जो भोजन हम ले रहे हैं, वह हमारी जीवन-शक्ति को कमजोर कर रहा है। इस तरह के अनेकानेक कारण हैं जो हमारी आयु को क्षीण करने व शरीर को रुग्ण करने में अत्यन्त सहायक हैं।

सम्प्रति यदि देखा जाय तो ४५ से ५५ वर्ष की आयु में मनुष्य के शरीर में वृद्धावस्था के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। शरीर में कोई न कोई बीमारी जन्म लेने लगती है। भारत में अधिकतर लोगों की मृत्यु ५० से ६० वर्ष के मध्य कोई न कोई बीमारी के कारण हो जाती है; इसमें सबसे अधिक प्रमुख रूप से-हृदयाघात या हार्टअटैक है। यदि स्वस्थ व लम्बा जीवन जीना है तो जीवन जीने के अच्छे तौर-तरीके भी सीखने-समझने होंगे।

मैंने एक सज्जन, जो ९३ वर्ष के हैं, उनसे प्रश्न किया, ''आपने इतनी लम्बी आयु कैसे पाई ?'' तो श्री केशव तिवारी (निवासी-पासीखेड़ा कानपुर देहात) ने उत्तर दिया, ''मेरे जीवन में तीन प्रमुख बातें हैं, जिनके कारण मैं इतनी लम्बी आयु में भी स्वस्थ हूँ। एक तो मैं अपने मन-मस्तिष्क में कभी उत्तेजनात्मक विचार-भाव नहीं लाता, मात्र शान्ति लाने वाले विचारों को मैं प्रोत्साहन-पोषण देता हूँ। दूसरी बात, मैं उत्तेजित करने वाला भोजन नहीं लेता,

www.thearyasamaj.org

आलस्य नहीं करता और थोड़ा भोजन लेता हूँ। तीसरी बात, योग ऋषि रामदेव जी द्वारा बताए योग, प्राणायाम व कपालभाति को नियमित करता हूँ।''

श्री केशव तिवारी जी की यह तीन बातें हम सभी के लिए अत्यन्त जीवनोपयोगी हैं। यदि देखा जाय तो आज मनुष्य इन तीन बातों के विपरीत जीवन जी रहा है। हम नकारात्मक विचारों से घिरे रहते हैं, तनाव से भरे रहते हैं। मन को उत्तेजित करने वाले चटपटे, तले-भुने भोजन को ही पसन्द क़रते हैं और इनका प्रयोग करने में किसी प्रकार का परहेज नहीं बरतते। चाउमीन, पीजा, बर्गर, मैगी, स्नेक्स व स्ट्रीट फूड का ज्यादा प्रयोग करते हैं। हमारे भोजन के समय व भोजन की मात्रा पर भी हमारा कोई नियंत्रण नहीं रहता, जिसके कारण आलस्य आता है और स्फूर्ति गायब हो जाती है। जल्दी-जल्दी श्वास लेना भी हमें बीमारी की ओर ले जाता है।

इससे पता चलता है कि स्वस्थ व लम्बे जीवन के लिए जिन तथ्यों का पालन करना चाहिए, उनमें से हम किसी को भी अपने प्रयोग में नहीं ला पा रहे हैं, फलस्वरूप रुग्णता के शिकार हो रहे हैं। आजकल छोटे बच्चों से लेकर बड़े लोगों तक के शरीर में किसी न किसी प्रकार का रोग सहज ही प्रवेश कर जाता है, जबकि भारत में बहुत सारे चिकित्सालय हैं, अनेक प्रकार की सुविधाएं हैं, फिर भी शरीर लम्बे समय तक साथ नहीं देता।

व्यक्ति के जीवन में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रभु ने हमें एक निश्चित समय की आयु प्रदान की है और यह हमारे श्वांसों की गिनती पर आधारित है। यदि हम जल्दी-जल्दी व उथले ढंग से श्वांस लेने के अभ्यस्त हैं तो हम स्वत: ही रुग्णता को निमंत्रण देते हैं व अपने जीवन को कम करते हैं, क्योंकि उथली साँस हमारे फेफड़ों के भीतरी स्थानों तक नहीं पहुँच पातीं और इसके कारण बीमारियाँ जन्म लेती हैं। आचार्य बालकृष्ण जी इस सन्दर्भ में बताते हैं कि अधिकतर लोग इस रहस्य को नहीं समझते कि साँस किस प्रकार से लेनी चाहिए। प्राय: पूरी साँस ही नहीं लेते। पूरी साँस खींचकर लेने से फेफड़ों व शरीर के भीतरी हिस्सों का भली प्रकार से व्यायाम हो जाता है और वहां तक आक्सीजन पहुँच जाती है। जो लोग जल्दी-जल्दी श्वास लेते हैं वे एक मिनट में १४ से १५ साँस लेते हैं, जो लम्बी साँस लेते हैं वे १२ से १३, क्रोध करते समय २३ से ३० साँस व्यय हो जाती हैं। प्रत्येक मनुष्य का जीवनकाल हमारी साँसों के अनुसार कम-ज्यादा हो जाता है और यही

www.thearyasamaj.org

कारण है कि क्रोधी मनुष्य जल्दी थक जाता है और शान्त व्यक्ति जल्दी नहीं थकता है।

सुखी-सानन्द और निरोग जीवन जीने का एक सफल बिन्दु यह भी है कि मन को सशक्त व प्रसन्नचित्त रखा जाय। मन और शरीर का परस्पर बहुत गहरा सम्बन्ध है। शरीर की बीमारियाँ मन पर प्रभाव डालती हैं और मन की भावनाएं शरीर को प्रभावित करती हैं। शरीर की प्रक्रियाओं को अधिक नियंत्रित नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह स्वयमेव कार्य करती रहती हैं। लेकिन मन को नियंत्रित करके शरीर के ऊपर कुछ सीमा तक नियंत्रण किया जा सकता है। समयानुसार शरीर को वृद्ध तो होना ही है, फिर भी यदि निरोगी रहना है तो दृढ़ मनोबल, प्रसन्नचित्त स्वभाव व निरन्तर क्रियाशील रहना अनिवार्य है।

जीवन शैली के सन्दर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय के सत्रहवें श्लोक में श्री भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

अर्थात् दुःखों का विनाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करने वाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य सोने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है। गीता में श्रीकृष्ण जी ने स्वस्थ जीवन जीने के तत्त्व को भी बताया है। यथायोग्य का तात्पर्य है- जो न अधिक हो और न कम हो, बल्कि उचित मात्रा में हो, देशकाल व परिस्थिति के अनुरूप हो। इस तरह जो लोग निरोगी होकर दीर्घ आयु होकर जीवन जीते हैं, वे योग के इस सूत्र का परिपालन किसी न किसी रूप में अवश्य करते हैं।

स्वामी रामदेव जी द्वारा चलाया जा रहा आन्दोलन इस दिशा में अभिनव प्रयास कर रहा है। स्वामी जी बताते हैं कि योग के माध्यम से मनुष्य दीर्घायु और सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है।

८६/३२३ देवनगर, कानपुर-२०८००३ (उ०प्र०) मो.: ०९२३५५११०८३

www.thearyasamaj.org

योगः विज्ञान और मनोविज्ञान

श्री रामशरण युयुत्सु

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में स्थायी सुख और शांति चाहता है। मनुष्य के सारे यत्न इसी लक्ष्य की सिद्धि के लिये मालूम होते हैं, परन्तु वास्तव में सुख पदार्थों में नहीं है, वह तो मन की एकाग्रता द्वारा स्वरूप स्थिति में है। यदि किसी मनुष्य के सामने समस्त रसों से युक्त पदार्थ रखे हों, परन्तु यदि उसका मन किसी कारण से अशांत हो जाये, तो उस समय वे पदार्थ उसे नहीं भाते। किसी समय मन प्रसन्न होने पर सूखी रोटियां भी सभी रसों का सार दिखाई देती हैं। अतः विचार करने पर पायेंगे कि सभी प्रकार के सुख-दुख हमारे कर्मों पर ही निर्भर हैं। कर्म सिद्धांत तो नास्तिकों को भी मानना चाहिए, क्योंकि क्रिया और प्रतिक्रिया के वैज्ञानिक सिद्धांत को तो वे मानते हैं और 'कर्म और फल' उसी नियम का आध्यात्मिक पक्ष ही तो हैं मन को निर्मल एवं निर्विकार करने तथा विकारों को निर्बीज बनाने के उपाय का नाम ही योग है। योग ही एक ऐसी सूक्ष्मतम अग्नि है जिससे मनुष्य के विकर्म दग्ध होते हैं। योग ही संस्कारों के परिवर्तन का भी एकमात्र साधन है। आनन्द का सागर एवं सर्व सुखों का दाता माना गया है। उस एक से नाता जोड़ने से तथा उसका संग लेने से ही मनुष्य को सम्पूर्ण आनन्द की प्राप्ति हो जाती है और उस एक परमात्मा से ही संबंध जोड़ने का नाम योग है।

आज लोग विज्ञान के चमत्कारों से बहुत प्रभावित हैं। विज्ञान के तीव्रवेगी विकास ने मनुष्य को भौतिक सुख-सुविधा के अनगिनत साधन तो प्रदान किये, परन्तु उसके पीछे करोड़ों ही मनुष्यों का जीवन, धन तथा समय लगा है, जिसका कोई हिसाब नहीं। परन्तु फिर भी संसार की हालात सुधरी नहीं बल्कि पतन हुआ है। रोग, कष्ट, दुःख अथवा अशांति के कारण हमारे सामने आये हैं। परन्तु योग अकेला ही सभी प्रकार के सुख प्रदान कर सृष्टि की रूपरेखा, आचार-विचार, परंपरा, व्यवहार सभी कुछ बदल देता है। तब वहां उस योग-विज्ञान द्वारा मनुष्य को निरोग काया मिलती है और वह अमर देवपद को प्राप्त होता है।

विज्ञान मनुष्य को सृष्टि के जिन रहस्यों

www.thearyasamaj.org

का बोध कराता है और समाचार प्राप्त करने तथा प्रसारित करने के यंत्र अथवा साधन आदि प्रदान करता है। उससे कहीं अधिक ज्ञान (मनुष्य और सृष्टि संबंधी जानकारी) योग रूपी विज्ञान से प्राप्त होती है। योग मनुष्य को सूर्य और तारागण के पार के लोगों का भी सहज ही ज्ञान कराता है। योगी त्रिकालदर्शी एवं त्रैलोकज्ञ परमात्मा से संबंध स्थापित करके सब कुछ जान लेते हैं। वैज्ञानिक तीव्र योगीगामी राकेटों द्वारा जहां पहुंच पाते हैं, योगी दिव्य प्रज्ञा (दिव्य बुद्धि) अथवा ऋतम्भरा बुद्धि (पवित्र एवं सत्यदर्शी बुद्धि) द्वारा वहां सहज ही पहुंच जाते हैं। वैज्ञानिकों के पास टैलीविजन, टैलीस्कोप, वायरलैस आदि साधन हैं, तो योगी के पास दिव्यदृष्टि इससे बहुत सूक्ष्म रूप से कार्य करती है।

विज्ञान की जो भट्टी, विद्युत-चुम्बकीय साधन, रिमोट कन्ट्रोल तथा परमाणु-शक्ति का ज्ञान या तत्संबंधी आविष्कार प्राप्त हैं, तो ठीक उसी प्रकार अध्ययन-क्षेत्र तथा अनुभव को योगरूपी विज्ञान का भी है। योग-रूपी विज्ञान परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म जो 'आत्मा' है, उसका बोध एवं अनुभव कराता है। जैसे विज्ञान शरीर-विज्ञान और शरीररचना का परिचय देता है, वैसे ही योग-विज्ञान मन-बुद्धि, संस्कार, रूप, आत्मिक योग्यताओं का ज्ञान कराता है।

विज्ञान द्वारा इतने आविष्कार होने पर भी मनुष्य के मन को शान्ति नहीं, बल्कि आज मानसिक रोगों तथा दुखों में वृद्धि ही हुई है। आज मनुष्य क्षण में अपने मानसिक संतुलन को खो बैठता है तथा उत्तेजित हो जाता है, घबरा जाता है, परेशान हो उठता है और सटपटा जाता है। अतः इन उलझनों, मानसिक ग्रंथियों की उत्तेजित अवस्थाओं, मानसिक असन्तुलन, आवेग संबंधी त्रुटियों इत्यादि को ठीक करने के लिये मनोविज्ञान और उसकी शाखा मनोविश्लेषण तथा मानसिक रोग विद्या इत्यादि ने विकास पाया है। परन्तु फिर भी मानव के चरित्र या मानसिक संतुलन में तो कोई प्रगति दिखाई देती नहीं है।

आज मानव एक तनावपूर्ण जीवन जी रहा है। इस तनाव का विष प्रत्येक मानव के मन और बुद्धि में भरा पड़ा है। प्रत्येक व्यक्ति की वस्तुओं और अन्य मनुष्यों के प्रति आन्तरिक भावनाएं, आसक्ति, घृणा, संकल्प-विकल्प आदि इस मानसिक खिंचाव, ऐंठन, मानस-प्रदूषण एवं तनाव के जनक हैं। वास्तव में तनाव होता ही नहीं है, उत्पन्न किया जाता है-

मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षायोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तं निर्विषयं स्मृतम्।।

अर्थात् मन ही मनुष्य के बन्धन और

www.thearyasamaj.org

मोक्ष का कारण है, विषयासक्त मन बन्धन के लिये है और निर्विषय मन मुक्त माना गया है। योगरूपी विज्ञान केवल हमें मन, बुद्धि, संस्कार, स्वभाव, व्यवहार, चरित्र इत्यादि से संबंधित अद्‌भुत ज्ञान देता है, बल्कि मनुष्य की प्रवृत्तियों की मार्गान्तरी कारण तथा शुद्धिकरण करके उसके व्यवहार तथा आचार को सुधारता है और उसके संस्कारों को सतोप्रधान बनाकर देवतुल्य बनाता है।

मानसिक तनाव के स्थायी उन्मूलन का एकमात्र साधन ध्यान और योग ही है। आज सभी आधुनिक मनोविज्ञानशास्त्री इस बात का अनुभव करते हैं कि सच्ची सन्तुष्टि और सुख तब तक अप्राप्य रहेंगे, जब तक मनुष्य आत्मिक शांति प्राप्त नहीं कर लेता। इसके लिये मानसिक धैर्य की परम आवश्यकता है। योग से मानसिक तनाव अशांति और निष्क्रियता दूर होती है। शनैः-शनैः ध्यान और योग के अभ्यास से मन पूर्णतः शान्त स्थिर और भावातीत अवस्था को पहुँच जाता है। योग द्वारा स्नायुतंत्रों को जो विश्रान्ति मिलती है, वह उपचार विज्ञान की दृष्टि से भी विभिन्न व्याधियों के निदान के लिये आवश्यक है।

योग-विज्ञान मनुष्य के आवेगों को नियंत्रित करता है तथा मनुष्य के विचारों को व्यवस्थित एवं सुलझा हुआ बनाता है। योग-विज्ञान द्वारा मनुष्य की मानसिक एकाग्रता भी बढ़ती है और उसे स्थाई शांति का अनुभव भी होता है। इससे मनुष्य में सामाजिक गुणों तथा शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक योग्यताओं और आत्मिक महानताओं का पूर्ण विकास होता है।

श्री अंगरा शोध संस्थान, ४१९/३, शान्ति नगर, पटियाला चौक,
जीन्द-१२६१०२ (हरियाणा)

www.thearyasamaj.org

रघुवंश में पर्यावरण-चेतना

-सुश्री आरती शर्मा

संस्कृत-साहित्य के विपुल कोश में महाकवि कालिदास की काव्य-सुषमा अद्‌भुत है। उन्होंने अपने काव्य के कण-कण में भारत की गौरवपूर्ण संस्कृति का यशोगान और उच्च आदर्शों का समावेश किया है।

कालिदास के प्रकृति-वर्णन से पूर्व प्रकृति तथा पर्यावरण क्या है? इसे स्पष्ट करना समीचीन होगा। समस्त ज्ञात ब्रह्माण्ड प्रकृति है, अर्थात् भूमि, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, अन्य ग्रहादि, वनस्पति, जीव-जन्तु, मानव सभी कुछ प्रकृति है।

पर्यावरण जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त जैविक और अजैविक परिस्थितियों का योग है। इन जैविक तथा अजैविक कारकों को जीव प्रभावित करता भी है तथा इनसे प्रभावित होता भी है। जीव एवं पर्यावरण के अन्त:सम्बन्ध के अध्ययन का विज्ञान पर्यावरण विज्ञान कहलाता है। यह इस सम्बन्ध का अध्ययन जीव के वासस्थान के अन्तर्गत ही करता है।[१] अत: पर्यावरण को जानने के लिए प्रकृति के नियमों, उसके सभी अंगों का गहन ज्ञान आवश्यक है।

कवि मानवीय दृष्टिकोण से परिवेश को देखता और निरूपित करता है। अत: मानव के लिए समस्त प्राकृतिक वातावरण, जीव-जन्तु, अन्य मानव-सभी पर्यावरण के अन्तर्गत माने जाते हैं। ये सभी मानव को प्रभावित करते हैं और मानव इन्हें। प्राणी और प्रकृति के सम्बन्ध को जानने और सँवारने के लिए कवि कालिदास ने कविता के माध्यम से वह दृष्टिकोण सम्मुख रखा है जिसे अपना लेने पर शिव तथा सुन्दर का मेल चिरन्तन-सत्य बना रह सकता है।

महाकवि कालिदास का 'रघुवंश' महाकाव्य भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि काव्य है। इसमें कालिदास मानव और प्रकृति के आदर्श संबंध की स्थापना करना नहीं भूले हैं। दिलीप की तपोवन यात्रा, दशरथ का वनविहार, सङ्गम दर्शन, दक्षिणी महासमुद्र

१. 'पर्यावरण तथा प्रदूषण' अरुण रघुवंशी, चन्द्रलेखा रघुवंशी। पृ० सं० २१

www.thearyasamaj.org

का वर्णन, ध्वस्त अयोध्या का कुश को स्वप्नदर्शन आदि अनेक प्रसङ्गों में कालिदास ने पर्यावरण के विविध चित्र चित्रित किए हैं।

रघुवंश की दिग्विजय-यात्रा सुह्म व बंग देश से पूर्वी समुद्रतट, दक्षिण होते हुए पश्चिमी समुद्रतट और फिर पारसीकों-यवनों के अफगानिस्तान तक जाकर पुनः उत्तर में हिमालय शृंखला को पार करते हुए पूर्व में प्रागज्योतिष और कामरूप तक के सम्पूर्ण भारत का सूक्ष्म एवं यथावत् भौगोलिक मानचित्र प्रस्तुत करती है। यहीं दक्षिणवर्ती मलयाचल पर्वत की प्राकृतिक सम्पदा को कवि ने इस प्रकार चित्रित करते हुए कहा है कि- सदा सर्पों से लिपटे रहने के कारण वहां के चन्दनवृक्षों पर बनी गहरी धारियों में बँधे रस्सों को वे हाथी न तोड़ सके जो पैर की साँकलों को झटके से तोड़ देते थे।[2] लङ्काविजयोपरान्त राम का पुष्पक विमान द्वारा प्रत्यावर्त्तन वृतान्त लंका से अयोध्या तक का विहंगम दृश्य समुपस्थित कर देता है। भौगोलिक स्थलों का ऐसा चित्रण कालिदास के पर्यावरण ज्ञान का प्रबल प्रमाण है, क्योंकि पर्यावरण विज्ञान का अध्ययन-क्षेत्र प्राणी का वासस्थान ही है।

रघुवंश की सम्पूर्ण वृत्तयोजना त्याग-तप-तपोवन के भारतीय आदर्श की पुष्टि करती है। कालिदास ने अनेकशः दर्शाया है कि कठिन तप के बिना महान् फल पाना असम्भव है। सर्वशक्तिसम्पन्न राजा दिलीप का तपोवन में रहकर कामधेनुसुता नन्दिनी की अगाध सेवा करते हुए प्राणोत्सर्ग तक के लिए तत्पर हो जाना सत्ता का प्रकृति के समक्ष श्रद्धावनत होने का सूचक है। पशु का ऐसा सम्मान समस्त पशु-जगत् को संरक्षण देने की प्रेरणा प्रदान करता है।

वर्तमान पर्यावरणीय संकटों का मूलकारण जनसंख्या की असीमित वृद्धि को माना जाता है। रघुकुल राजाओं को 'प्रजायै गृहमेधिनां'[3] के विशेषण से सुशोभित करना साभिप्राय है। वंशपरम्परा किसी भी जीव-जाति के अस्तित्व की निरूपणता के लिए अत्यावश्यक है किन्तु 'प्रजायै' में प्रयुक्त एकवचन इस दिशा में सन्तुलित वृद्धि की ओर गूढ़ संकेत कर रहा है।

काव्य के इस आरम्भ और अन्त में कवि हृदय की बात प्रच्छन्न है। भौतिकलिप्सा के कारण पर्यावरण पर अनुचित बोझा बढ़ जाता है और परिणाम होता है- 'प्रदूषण'। कालिदास का नगरों से वैर नहीं, अन्यथा वे अयोध्या के जीर्णोद्धार का विस्तृत वर्णन न करते। किन्तु वे नगरों को वन्य-सरलता पर, भौतिकता को प्रकृति पर हावी होने देना श्रेयस्कर नहीं समझते। अतएव वे विषयभोग से घिरे राजाओं को

२. रघुवंश, ४.४८

३. रघुवंश, १.७

www.thearyasamaj.org

राजभवनों से निकालकर तपोवन में ले जाते हैं जहां प्रकृति की मर्यादा के बीच रह कर वे उसे अक्षुण्ण बनाए रखने का सत्य सीख सकें।

अपने प्राकृतिक परिवेश को प्रेरणास्रोत मानकर कालिदास विवेकी मानवजाति के समक्ष 'त्यागाय संभृतार्थानाम्' का आदर्श रखते हैं। जिससे ऋत बाधित न हो जाए, जीवन विद्रूप न हो जाए। प्राकृतिक सत्य में अनुचित हस्तक्षेप भौतिक पर्यावरण, जीव-जन्तु समुदाय तथा स्वयं मानव के लिए हानिकार है। कालिदास की पर्यावरणीय दृष्टि इस ज्ञान को सूक्ति में पिरो कर जनमानस तक प्रसार पाना चाहती है- आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव। अर्थात् मेघों के समान सज्जन व्यक्तियों द्वारा किसी का ग्रहण भी दान के लिए ही होता है। हम अपने पर्यावरण में जो कुछ ग्रहण करते हैं, उसे यदि हम दान नहीं अपितु ऋण की भावना से ग्रहण करें तो प्रकृति का कोश अशेष अपरिमित है।

पर्यावरण में किए गए व्याघात के निराकरण के लिए ही यज्ञविधान किया गया और पंचहिंसा शमन को आचरण का अङ्ग बनाने का उपदेश दिया गया। यज्ञ-समिधा का अग्नि को समर्पण मात्र नहीं, यह प्रतीक है त्याग-भाव का। कालिदास ने याग तथा त्याग का सर्वत्र समर्थन किया है। देवयज्ञ, पितृयज्ञ, नृयज्ञ, ऋषियज्ञ- ये सभी विविध ऋणों से उऋण होने के ही साधन हैं। यही नहीं इन यज्ञों का वैज्ञानिक आधार भी कालिदास को ज्ञात था। इसीलिए तो वे कहते हैं कि शास्त्रीय विधिपूर्वक अग्नि में समर्पित हव्य की आहुति जलवृष्टि में सहायक होती है।[४] वर्तमान विज्ञान के लिए यह विवाद का प्रश्न हो सकता है किन्तु हमारे प्राचीन ज्ञानी इस तथ्य से परिचित थे कि जलवाष्प से बने मेघ यज्ञ की धूम से सघन हो शीघ्र ही जलबिन्दुओं में परिणत होकर बरसने लगते हैं।

कवि कालिदास ने पंचमहाभूतों-जल, वायु, अग्नि, आकाश, भूमि की उपयोगिता और इनकी अपरिहार्यता को प्रत्यक्ष रूप से भी और परोक्ष रूप से भी वर्णित किया है।

रघुवंश में सागर और नदियों का स्थान-स्थान पर विस्तृत वर्णन किया गया है। कालिदास ने प्रथम सर्ग में ही दिलीप की तुलना सागर से करते हुए कहा है कि सागर विविध प्रकार के जीवों और रत्नों से युक्त होता है।[५]

वायु की आवश्यकता की ओर कवि इंगित करते हैं कि वायु के कारण ही हम सुख से साँस

---

४. रघु० १/६२

५. वही, १/१६

www.thearyasamaj.org

ले पाते हैं[६] और शीतल वायु से अपनी थकान मिटा पाते हैं।[७] कवि इस विज्ञान से भी परिचित हैं कि वायु की शुद्धता आवश्यक है और हविष्यान्न वायु को शुद्ध करने वाला होता है।[८]

महाभूतों में तेजतत्त्व का प्रतिनिधित्व करने वाले सूर्य और चन्द्रमा को कवि अन्धकार से जनता की रक्षा करने वाला अभिव्यक्त करते हैं।[९] वे यह मानते हैं कि सूर्य की किरणें समस्त संसार को चेतना प्रदान करने वाली होती हैं।[१०] उनका कविहृदय सायंकालीन सूर्य को उत्तर तथा दक्षिण दोनों मार्गों को पवित्र करने वाला वर्णित करता है।[११] वे यह भी मानते हैं कि चाँदनी श्रम को दूर करके सुख प्रदान करने वाली होती है।[१२]

पृथ्वीतत्त्व के विषय में भी अपने सुविचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि पृथ्वी ही संसार को धारण करने वाली होती है। अत: उसकी रक्षा करना परम आवश्यक है-

पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप
गोरूपधरामिवोर्वीम्।।[१३]

पृथ्वीतत्त्व के अन्तर्गत ही पर्वत, वृक्ष, लताएँ तथा अन्य वनस्पतियाँ आती हैं। रघुवंश में यत्र-तत्र अनेक पर्वतों का भी वर्णन प्राप्त होता है। कवि के अनुसार पर्वतों पर चढ़ने से सुख की अनुभूति होती है।[१४] सम्पूर्ण रघुवंश में अनेकत्र वृक्षों की उपादेयता का वर्णन मिलता है। कवि ने अनेक स्थलों पर वृक्ष का वर्णन करते हुए उसका पालन पुत्र की भांति करने का निर्देश दिया है।[१५] कवि प्रकारान्तर से यह संदेश देते हैं कि जब वृक्षों का पालन पुत्र जैसा किया जाएगा तभी वे आश्रय प्रदान करेंगे,[१६] उनके नीचे सोने पर सुख की प्रतीति होगी[१७] और वृक्ष अपने फलों के द्वारा अतिथियों का स्वागत करेंगे।[१८] कवि ने स्थान-स्थान पर अनेक प्रकार के पुष्पों की चर्चा की है और इसके अतिरिक्त कवि ने जानवरों, पक्षियों का भी वर्णन किया है, उन्हें समाज के लिए हितकारक बताया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि कालिदास ने अपने काव्य रघुवंश में प्रकारान्तर से प्रकृति के विविध तत्त्वों का वर्णन करते हुए सिद्ध किया है कि उन सबकी जीवन में उपयोगिता है एवं पर्यावरण की दृष्टि से वे सभी तत्त्व बड़े उपादेय तथा महत्त्वपूर्ण हैं।

संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

---

६. रघुवंश, १०.७३ — ७. वहीं, १.१२६ — ८. वही, १३.३७
९. रघुवंश, ११/२४ — १०. वही-५/४
११. वही-२/१५, १७/२ — १२. वही-१९/३९ — १३. वही- २/३
१४. रघु० १३/७४ — १५. वही, २/३६, ५/६, १४/७८ — १६. वही, १२/२१
१७. वही, १३/४६ — १८. वही, १/३८, १/४३, २/१०, २/१३, ११/११

www.thearyasamaj.org

बृहत्त्रयीकालीन शिक्षाप्रणाली

–श्री शशि कुमार

बालक में स्नेह, संयोग, त्याग, सन्तोष आदि सद्‌गुणों को विकसित करने वाली पहली पाठशाला उसका परिवार होती है। जहाँ वह अपने माता–पिता व अन्य पारिवारिक सदस्यों के द्वारा इन गुणों का अर्जन करता है। बृहत्त्रयीकालीन समाज में जब बालक गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण करने के योग्य हो जाता था, तो उसे समुचित शिक्षा प्राप्त करने के लिये गुरुकुल भेजा जाता था। यह गुरुकुलपरम्परा वैदिककाल से चली आ रही है। उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान के लिये ऋषियों की आवासभूमि अरण्य को बताया गया है, साथ ही गुरुकुल को आचार्यकुल भी कहा गया है।[१] गुरु व्यास के आदेश पर अर्जुन तपस्या करने के लिये इन्द्रकील पर्वत की तपोभूमि पर जाता है।[२] श्रीहर्ष ने वर्णित किया है कि बालक के लिये प्रथम शिक्षणसंस्था उसका परिवार था।[३] तत्पश्चात् गृहस्थाश्रम से पूर्व तक विद्यार्थी गुरु के चरणों में रहकर ज्ञान अर्जन करता था। शिक्षणविधि में पठन–पाठन की प्रक्रिया प्रायः मौखिक थी। यज्ञों के अवसर पर वैदिक सूक्तों का सस्वर गायन होता था। माघ ने उल्लेख किया है कि श्रुतिपरम्परा से अध्ययन कराया जाता था। ध्वनियों के उचित आरोह–अवरोह का ध्यान रखते हुए वेदपाठ का अभ्यास कराया जाता था।[४] शिष्य गुरु के समीप अध्ययनहेतु शान्त मुद्रा में हाथ जोड़कर बैठता था।[५] गुरु–कुल में गुरुपरम्परा से शिक्षा दी जाती थी। अध्ययन–अध्यापन, ध्यान एवं योग अभ्यास का समय प्रातःकाल था।[६] शिक्षा के समय शिष्य के मन में उत्पन्न होने वाली विषय–सम्बन्धी शंकाओं का समाधान करने के साथ–साथ अर्थसहित वेदमन्त्रों के उच्चारण का ज्ञान कराया जाता था।[७] शिष्य के लिये गुरु का आदेश सर्वोपरि था। भारवि ने किरातार्जुनीयम् में उल्लेख किया है कि गुरु के बताये मार्ग पर

१. मुण्डकोपनिषद् १/२/११,१२छान्दोग्योपनिषद् २/२३/१ २.किरातार्जुनीय ३/२९
३. नैषधीयचरित १/१४२ ४.शिशुपालवध १४/२४ ५.नैषधीयचरित १७/१८०
६. शिशुपालवध ११/६ ७.नैषधीयचरित १९/६०

www.thearyasamaj.org

चलने वाले सज्जनों का कल्याण होता है।[८]

मौखिक शिक्षणपद्धति के अतिरिक्त समयानुसार लेखनकला का भी विकास हुआ। जिसमें भोजपत्र, कमलपत्र आदि प्रमुख थे। जिन पर मयूरपंख से लिखा जाता था। कालान्तर में इसमें परिवर्तन होने लगा और लेखनकला का प्रारम्भ हो गया। श्री हर्ष ने नैषधीयचरित में लिपि व देवलिपि का उल्लेख किया है।[९] उस समय वर्णमाला को लिपि कहा जाता था।[१०] शब्दों एवं पदों को वर्ण कहा जाता था।[११] श्री हर्ष ने प्रथम रेखा-अभ्यास को 'हस्तलेख' कहा है।[१२] हस्तलिखित पाठ्य-पुस्तकों को 'नरसल' नामक तृण- विशेष की कलम से एवं स्याही का प्रयोग काली पट्टी पर खड़िया (चूना पत्थर) से लिखकर अभ्यास आदि किया जाता था।[१३] पाठ्य-पुस्तकें वेद-विरोध रहित एवं स्पष्ट अर्थ का प्रतिपादन करने वाली होती थीं।[१४] तमाल -पत्र वे केतकी के पत्तों पर लेखनकार्य किया जाता था। रेखाएं खींचकर गणित का अभ्यास किया जाता था।[१५] शिक्षा पूर्ण करने पर शिक्षार्थी को स्नातक कहा जाता था। श्री हर्ष ने तीन प्रकार के स्नातकों का उल्लेख किया है- विद्यास्नातक, व्रतस्नातक, उभय-स्नातक।[१६] विषम आचरण करने वाले गुरु की आज्ञा का उल्लंघन अपराध नहीं माना जाता था।[१७] प्रारम्भ में गुरुकुल प्रायः आचार्यों पर पूर्णरूप से निर्भर थे। परन्तु बृहत्त्रयीकालीन शिक्षा-प्रणाली के केन्द्रों के रूप में विद्यालयों एवं गुरुकुलों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ। जिसका व्यय-वहन राजादि तथा समाज के अग्रगण्य लोग करने लगे। वर्तमानकाल में भी शिक्षा के केन्द्र विद्यालयादि के संचालन का पूरा व्यय-वहन या तो सरकार उठाती है या समाज के अग्रगण्य लोग।

–शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर (पंजाब)

८. किरातार्जुनीय १३/१३
९. नैषधीयचरित ६/६४
१०. शिशुपालवध ७/३९
११. वही, २/७२
१२. नैषधीयचरित ७/७२
१३. वही, १३/४८
१४. शिशुपालवध १४/३७
१५. नैषधीयचरित ६/६३ , ७/४१
१६. वही, १७/१८१
१७. शिशुपालवध १२/५६

www.thearyasamaj.org

विवेकानन्दचरितामृत महाकाव्य में नायक

–सुश्री शालिनी देवी

संस्कृत-वाङ्मय के विभिन्न काव्यशास्त्रियों ने नायक एवम् उसकी प्रकृति के सम्बन्ध में पर्याप्त चिन्तन किया है। काव्यशास्त्र के आदि आचार्य भरत ने नायक का लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि - नायक उत्तम प्रकृति का होना चाहिए। इनके अनुसार नायक चार प्रकार का होता है- धीरोद्धत, धीरललित, धीरोदात्त, धीरप्रशान्त।[1]

आचार्य रुद्रट का अभिमत है कि त्रिवर्णों में से किसी एक वर्ण का व्यक्ति महाकाव्य का नायक हो सकता है। उनके मतानुसार कवि उत्साह से सम्पन्न, सर्वगुणयुक्त सर्वप्रिय, विजय के इच्छुक नायक की स्थापना करें।[2] इसी परम्परा में आचार्य दण्डी ने पूर्वोक्त दोनों मतों का समर्थन करते हुए लिखा है कि - धीरोदात्त गुण सम्पन्न किसी भी वर्ण के व्यक्ति को महाकाव्य का नायक बनाया जा सकता है।[3]

दशरूपककार आचार्य धनञ्जय के अनुसार नायक में निम्न गुण होने चाहिएं-

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तश्लोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरोयुवा।।
बुद्ध्यायुत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामान समन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।[4]

आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में नायक का लक्षण करते हुए कहा है कि - नायक त्यागी (दानशील) कुशल, उच्चकुल में उत्पन्न, सम्पत्ति वाला, सौन्दर्य, तारुण्य, उत्साह से युक्त, शीघ्र काम करने वाला, सभी को अनुरक्त करने वाला, प्रतापी, निपुणता और सच्चरित्र वाला पुरुष होता है।[5] उन्होंने नायक के चार भेद माने हैं- धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित, धीरप्रशान्त।[6] प्रस्तुत महाकाव्य के नायक स्वामी विवेकानन्द धीरोदात्त कोटि के नायक हैं।

१. नाट्यशास्त्र अध्याय-९.४९
२. काव्यालंकार- तत्र त्रिवर्गस्वुक्तं समिद्धशक्तित्रयं च सर्वगुणम्।
रक्तसमस्तप्रकृति विजिगीषु: नायकं न्यस्येत्।।१६/८
३. काव्यादर्श- १/१५
४. दशमरूपक- प्रथम प्रकाश, १-२
५. साहित्यदर्पण- ३.३०
६. वही (३.३१)

www.thearyasamaj.org

विश्वनाथ ने आत्मश्लाघा न करने वाला, क्षमागुणशाली, अत्यन्त गम्भीर प्रकृति का, शोक, हर्ष आदि से अप्रभावित चित्त वाला, स्थिर प्रकृति का प्रच्छन्न मान वाला (निरभिमान), स्वीकार किये गये विषय का पालन करने वाला नायक धीरोदात्त कहा है।[७]

विवेकानन्दचरितामृतम् महाकाव्य के नायक विवेकानन्द में निम्नलिखित गुण हैं-

त्यागी - रामकृष्ण परमहंस के सम्पर्क में आने के बाद स्वामी जी ने सब कुछ छोड़-छाड़कर निरन्तर ध्यान एवम् योगाभ्यास करने में तत्पर होकर साधना की। अचानक उनके सम्मुख साधना के मार्ग को रोकने वाले दो विघ्न उपस्थित हो गये। पिता की मृत्यु और घर में दरिद्रता।[८] गुरु की प्रेरणा से नरेन्द्र ने परिवार की विपत्तियों के नाश के लिये माँ काली के मन्दिर में भक्ति की और वहाँ माँ से भोगों की अपेक्षा वैराग्य माँग बैठे।[९]

कृती (कुशल) - स्वामी विवेकानन्द जी की कुशलता जिस प्रकार पढ़ने-लिखने में थी, उसी प्रकार खेलने कूदने में तथा संगीत में भी स्वाभाविक रूप से चमकने लगी।[१०]

कुलीन - कलकता में शुद्ध दत्त वंश में बुद्धिमान् एवं प्रतिभाशाली उच्चन्यायालय में ख्यातिप्राप्त श्रेष्ठ वकील व विद्वान् श्री राममोहन नामक विधिवेत्ता हुये।[११] उनके घर में भगवती दुर्गा के चरणों की कृपा से दुर्गाचरण नाम का पुत्र हुआ जो पिता के अनुकूल आचरण वाला था।[१२] इसी प्रकार वंशपरम्परा में वीरेश्वर नामक पुत्र हुआ।[१३] उनकी पत्नी उत्तमगुणों से युक्त भुवनेश्वरी थी।[१४] जो पतिव्रता तथा महादेव की साधना भी करती थी। उनकी कृपा से विश्वनाथ की पत्नी ने सोमवार के दिन पुत्र को जन्म दिया-

गर्भे प्रोढिं सग..याते संक्रान्ते मकरं रवौ।
विश्वनाथप्रिया जज्ञे सुतं हि सोमवासरे।।[१५]

रूपयौवन - अध्यात्मतत्त्व को जानने के इच्छुक, ज्ञान और भक्ति से युक्त विद्या से विभूपित, आत्मगौरव में स्थित तथा शान्त और तेजस्वी मुखाकृत्ति वाले उस युवा को देखकर रामकृष्ण का मन आशा से पूर्णतया प्रकाशित हो उठा।[१६]

उत्साहयुक्त - स्वामी विवेकानन्द जी इतने उत्साहशील थे कि वे गुरु के आदेश से देश के

७. साहित्यदर्पण, ३.३२
८. विवेकानन्दचरितामृत्तम् २.४०
९. वही, २.४२
१०. वही, १.३५
११. वही, १.११३
१२. वही, १.३२-३३
१३. वही, १.११
१४. वही, १.२६
१५. वही, १.२९
१६. वही, २.५/६

www.thearyasamaj.org

उत्थान के महान् व्रत को पूरा करने के लिये साधु (नरेन्द्र) भारत भ्रमण के लिये निकल पड़ा।[१७] वे अपने लक्ष्य से कदापि विमुख नहीं होते थे। वह हमेशा उत्साहयुक्त वचन कहते थे। उनका कहना था कि उत्साह से युक्त व्यक्ति ही जीवन में आगे बढ़ सकता है।

लोक को अनुरक्त करने वाला - स्वामी जी प्रजा में अनुरक्त थे। वे गुरु द्वारा दी गई शिक्षा का पालन करते हुए जनहित के कार्यों में लग गये।[१८]

अविकत्थन - देशों विदेशों में ख्याति प्राप्ति के बाद भी वे अपनी आत्मश्लाघा नहीं करते थे। वे अपनी उन्नति का श्रेय अपने गुरु को ही देते थे।[१९] क्योंकि साक्षात् भगवान् नारायण के रूप वाला श्री रामकृष्ण जैसा गुरु अनेक जन्मों के पुण्यों के प्रताप से ही प्राप्त होता है।[२०]

क्षमावान् - स्वामी जी के उपदेशों तथा गुणों को लोगों ने आत्मसात् कर लिया। जन-जन में वास्तविक मित्रता, दया, क्षमा तथा दीनों की रक्षा आदि धर्म (धार्मिक भाव) पैदा हो गए।[२१]

महासत्त्व - स्वामी जी शोक और हर्ष से विचलित नहीं होते थे। तभी तो अपने प्राण-प्रिय गुरु का देहान्त होने पर भी वे अपने लक्ष्य को नहीं भूले। गुरुदेव के वियोगरूपी दु:ख से दु:खित मन को अपने विवेक (ज्ञान) से तथा प्रभु की कृपा से शान्ति प्रदान की।[२२]

स्थिर-प्रकृति - स्वामी जी अपनी यात्राओं के दौरान एक बार जब बैंगलूर मठ गये। वहाँ अत्यधिक शीत से पीड़ित शरीर तथा रुग्ण होते हुये भी आत्मबल से दृढ़ विवेकानन्द बर्फीले रास्तों को पैदल ही पार करके बैंगलूर मठ आ गये।[२३]

निगूढ़मान - स्वामी जी निराभिमानी थे। उन्होंने अपने प्रति घोर विद्रोह होने पर भी हिमालय की भाँति अचल दयानन्द की प्रशंसा की तथा उन्हें सिर झुकाकर नमन किया-

विद्रोहेऽपि महाघोरे निश्चलं हिमवानिव।
प्राशंसत् तं दयानन्दं नमामानतशीर्षकः।।[२४]

दृढ़व्रत - स्वामी विवेकानन्द जी का मानना था कि पूर्व और पश्चिम के संगम में ही विश्व का मंगल निहित है। जो सबको श्रेय (कल्याण) और प्रेय (सुख) की सिद्धि करने वाला है।[२५] इस प्रकार का दृढ़निश्चय करके उन्होंने देश- विदेशों में यात्रा करके विश्व-एकीकरण की भावना को पूरा करने का प्रयास किया। इस प्रकार सिद्ध होता है कि इस काव्य के नायक में धीरोदात्त के लक्षण पूर्णरूप से घटित होते हैं।

-शोधच्छात्रा, वी.वी.बी.आई.एस. एण्ड आई.एस. (पी.यू.), साधु आश्रम, होशियारपुर।

१७. विवेकानन्दचरितामृत ११.२२ | १८. वही, ३.११ | १९. वही, ३.११
२०. वही, ८.९ | २१. वही, १२.२० | २२. वही, ३.९
२३. वही, १४.११ | २४. वही, १२.५१ | २५. वही, ४.३५

www.thearyasamaj.org

रोगोत्पत्ति में मानसिक भावों का कर्तृत्व

श्री तरसेम कुमार

दोष- धातु-मल शारीरिक भाव कहलाते हैं, और आत्मा, इन्द्रियाँ, मन मानसिक भाव कहलाते हैं। ये दोनों प्रकार के भाव मिलकर साम्यावस्था में रहकर स्वास्थ्य को बनाये रखते हैं। इनमें वैषम्य आने पर नानाविध रोग होते हैं। मानसिक भावों की साम्यावस्था को प्रसन्नावस्था कहा है-

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते।

रोग का एक मुख्य कारण प्रज्ञापराध को बताते हुए कहा गया है कि-

धी- धृति, स्मृति के विभ्रंश होने के कारण मनुष्य जो अशुभ कर्म (मिथ्या आहार-विहार-आचार) करता है उसे प्रज्ञापराध कहते हैं जिससे दोषों का प्रकोप होता है। इस प्रकार रोगोत्पत्ति में मानसिक भावों की भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है जितनी शारीरिक भावों की।

परमात्मा के लक्षण ही जीवन के लक्षण होते हैं। इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और प्रयत्न ही क्रमशः *Assimilation, Excretion, Growth, Irritability* और *Reproduction* है। इन पांच लक्षणों को आत्मिक-भाव ही नियंत्रित करते हैं और वे ही परमात्मा के शेष पांच लक्षण हैं। यथा- चेतना, धृति, बुद्धि, स्मृति और अहंकार। चेतना धृति- बुद्धि-स्मृति के माध्यम से मन को उचित संदेश भेजती है। परन्तु यदि मन उनकी अवज्ञा करदे तो उस अवस्था को प्रज्ञापराध कहते हैं। यदि मन धृति की आज्ञा न माने तो *Excretion* ठीक नहीं होगा, मलसंचय हो जायेगा। यदि मन बुद्धि की बात न माने तो शरीर में निर्माणात्मक कार्य भी ठीक नहीं होंगे और यदि मन स्मृति की बात न माने तो *Irritability* अधिक होगी। किसी भी रोग की प्रारंभिक अवस्था में मानसिक भावों की ये विकृतियां अवश्य होती हैं। इस प्रकार मन द्वारा धी-धृति-स्मृति की आज्ञा न मानना प्रज्ञापराध कहलाता है जो रोगों का एक मुख्य कारण माना जाता है।

शारीरिक दोषों के मानसिक लक्षण भी होते हैं। यथा-वात का मानसिक लक्षण उत्साह है, पित्त का मानसिक लक्षण क्षमा-धृति-अलोभ है। स्वस्थावस्था में उत्साह

www.thearyasamaj.org

बना रहता है। जिससे प्रभा और प्रसाद (चेहरे की चमक और प्रसन्नता) ठीक रहते हैं। ऐसी अवस्था में मेधा भी ठीक कार्य करती है और व्यक्ति क्षमा-धृति-अलोभ युक्त रहता है। किन्तु विकृति में ये भाव विपरीत क्रम में बिगड़ जाते हैं, उनकी हानि हो जाती है। जिसके कारण पुरुषों द्वारा नाना-विध चिन्तन करने के कारण मन का लगाव विषयों की ओर हो जाता है और विषयों में आसक्ति के कारण उसमें नानाविध कामनाएं उत्पन्न होने लगती हैं। किन्तु जब उसकी मन:कामनाओं की पूर्ति नहीं होती तब उसको क्रोध आने लगता है। क्रोध से उसके मन का सन्तुलन बिगड़ जाता है। वह यह नहीं समझता है कि क्या करने योग्य है तथा क्या न करने योग्य है। क्योंकि उसकी समझ मारी जाती है, उसके मन में भ्रम उत्पन्न होने लगता है। जिसकी ज्ञानशक्ति ही नष्ट हो जाती है वह अपनी पूर्व स्थिति में नहीं रहता जिससे उसमें मानसिक तथा बौद्धिक कमी होने से शारीरिक कमी भी आ जाती है। जिसे एक प्रकार से मानसिक रोग ही कहा जा सकता है। इसके विपरीत निश्चय है कि व्यक्ति के मानसिक भाव यदि ठीक अवस्था में हैं तो वह एक प्रकार से एकदम स्वस्थ रहता है, पर विषमावस्था आने पर नानाविध रोग उसके शरीर में अपना घर बना लेते हैं।[१] अत: सभी प्रकार से मन के भावों को स्थिर रखना ही इन्द्रिय निग्रह तथा निश्चल मन कहा जायेगा। इसी अवस्था को भगवान् श्रीकृष्ण ने स्थितप्रज्ञ भी कहा है। क्योंकि ऐसी अवस्था में मन के स्वस्थ होने पर वह सुख और दु:ख रहित एवं क्रोध, रोग, भय इत्यादि से रहित होकर स्थिरबुद्धि हो जाता है।[२]

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

१. श्रीमद्भगवद्गीता, २,६१,६२

२. वही, २,५६-६०

www.thearyasamaj.org

पुराणों में वर्णित पुरुषार्थ-चतुष्टय

श्री सन्तोष दत्त लेखवार

पुराणों का सामान्य परिचय :-

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज की कतिपय प्रक्रिया साहित्य पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ती है। जिसको साहित्यकार अपनी कलाकृति द्वारा संगृहीत कर साहित्य के रूप में जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करता है। भारतीय संस्कृति की प्रमुख भावना आध्यात्मिक है। जिसमें आशावादी दृष्टिकोण ने संस्कृत-साहित्य को जोड़कर आदर्शों के सर्वांगीण विकास की कान्ति को सिंचित किया है। आज से हजारों वर्ष पूर्व ऋषि-मुनियों ने अपने जीवन की आदर्शवादी परिपाटी को समुन्नत बनाने हेतु धर्म के मार्ग को अपनाया। फलस्वरूप वेद-वेदान्त, पुराण आदि की रचना कर समाज में धर्म की धारा को प्रवाहित कर यथोचित परिवर्तन किया।

धर्म-दर्शन और जीवन से जुड़े पुराण आदि ग्रंथ किसी भी राष्ट्र की संस्कृति धरोहर नहीं होते हैं अपितु उनमें आये हुये उपाख्यानों को पाठक कहीं तो ज्यों का त्यों ग्रहण कर लेता है और कहीं इनमें परिष्कार करता हुआ इनको लोक-कल्याण के रूप में पुष्पित और पल्लवित कर देता है। पुराण भारतीय इतिहास के प्रतिबिम्ब हैं जिसमें भारत की सभ्यता, संस्कृति , विद्या-वैभव का विलास और सामान्य जीवन की छवि प्रतिबिम्बित होती है।

पुराण का लक्षण :-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पंच लक्षणम् ।।[1]

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में पुराण की गणना इतिहास के अन्तर्गत की है, कौटिल्य की दृष्टि से इतिहास का क्षेत्र अति-विस्तृत है।[2] ब्राह्मण-साहित्य में पुराणों का अस्तित्व प्रमाणित होता है गोपथ ब्राह्मण के अनुसार कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद्, इतिहास अन्वाख्यात तथा पुराण के साथ सब वेद निर्मित हैं।[3]

शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि यज्ञ-अनुष्ठाता उन्हें उपदेश करें कि पुराण ही वेद हैं।[4] **पुराण लौकिक व वेद अलौकिक हैं। समय की गतिशीलता यथासमय इन पुराणों का स्पर्श करती है इसलिये तन्त्रवार्तिका में वेदों को अकृत्रिम और पुराणों को कृत्रिम बताया है।**[5]

छान्दोग्य उपनिषद् में इतिहास तथा पुराण को संयुक्त रूप से नारद ने ''पंचम वेद'' कहा - इतिहासपुराण पंचमं वेदानां वेदम्।[6]

पुराणों की संख्या :-

मद्वयं भद्वयं चैव ब-त्रयं व-चतुष्टयम्।
अनापलिङ्गकूस्कानि पुराणानि पृथक्-पृथक् ।।

१. म.पु. २/२२/२४ — २.कौटिल्य ५/३ — ३. गो. ब्रा. पू. शा. २/१०

४. श. ब्रा. १३/४/३/१३ — ५. स्क. पु. १/२३/३० — ६.छान्दो. उप. ७/१/२

www.thearyasamaj.org

अर्थात् म से 2 मत्स्य तथा मार्कण्डेय, भ से भी 2 भविष्य तथा भागवत, ब से 3 पुराण ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्म से 4 पुराण। व. से विष्णु वामन, लि-से लिंग तथा ग से गरुड़ क- से कूर्म और स्क से स्कन्द ये 16 पुराण पृथक्-पृथक् कहे गए हैं।

पुरुषार्थ चतुष्टय- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से पुरुषार्थ चतुष्टय कहे गये हैं। इनमें प्रथम 3 की सिद्धि तो स्वतः हो जाती है केवल मोक्ष ही सांसारिक बंधनों को छोड़ने से प्राप्त होता है।[७]

धर्म - प्राचीनकाल में धर्माभिव्यक्ति के अनेक साधनोपाय थे। वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद् आदि धर्म की अभिव्यक्ति करते थे जिसमें वेद **सत्यं वद धर्मं चर** कहकर सम्बोधित करते थे। पुरुषार्थचतुष्टय का सर्वाधिक प्रभावशाली बिन्दु **धर्म** पुराणों का प्रमुख वर्ण्य विषय है। धर्म शब्द के 3 अर्थ हैं-

(1) धारण करने वाला (2)पालन-पोषण करने वाला(3)आश्रय(सहारा)देने वाला। साधारणतया धर्म के अंगों की चर्चा वामनपुराण में है-

तपो हिंसा च सत्यं च शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दया, दानं त्वनृशंस्यं, शुश्रूषा यज्ञकर्म च ।।[८]

मनुष्य को अहिंसा व्रत का पालन करते हुये अपनी अन्तरात्मा को उपयुक्त कर्म द्वारा विशुद्ध रखना चाहिये। विद्वानों ने सत्य को ही परम धर्म कहा है-

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।[९]

एकमात्र सत्य का अनुसरण करना ही परम तप, सत्य सर्वोत्तम ज्ञान है। इसी पर धर्म प्रतिष्ठित है। इस जगत् में सत्य पर ही सम्पूर्ण भाव स्थित है। भगवान् मनु ने स्पष्ट कहा है कि परलोक में जीव सहायतार्थ माता-पिता, बन्धु-बान्धव, पुत्र-पुत्री, सखा-सखी (स्त्री) कोई भी साथ नहीं देता है। केवलमात्र धर्म ही साथ देता है-

नामुत्र हि सहायतार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारा न ज्ञातिः धर्मस्तिष्ठति केवलः।।[१०]

प्रभु से मिलने का एकमात्र सहारा धर्म है। धर्म के मार्ग पर चलकर व्यक्ति सत्पुरुषों के समान पूज्य हो जाता है। भगवान् मनु ने धर्म के 10 लक्षण बतलाये हैं-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[११]

धैर्य, क्षमा, संयम, चोरी न करना, शौच (स्वच्छता), इन्द्रियों को वश में रखना, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना इस प्रकार धर्म के दस लक्षण हैं याज्ञवल्क्यस्मृति ने धर्म के 9 एवं श्रीमद्भागवत महापुराण के सप्तम स्कन्ध में सनातनधर्म के 30 तथा महाभारत के महान् यशस्वी पात्र विदुर जी ने धर्म के 8 अंग बताये हैं। सभी पुराण एवं विद्वज्जनों ने सत्य को ही धर्म का प्रथम लक्षण माना है व धर्म का आधारभूत स्तम्भ भी बतलाया है।

अर्थ- अर्थ व्यक्ति का द्वितीय पुरुषार्थ है जो उसके भोग, ऐश्वर्य, आरोग्य धर्मादि का मुख्य साधन है। यह संसार कर्मप्रधान है। यहाँ पर मानव के रहन-सहन, खान-पान तथा जीवनयापन के सम्पूर्ण साधन हैं इसलिये मनुष्य के समस्त कार्य अर्थमूलक हैं। अर्थ ही सभी मूलों का संयोजक है, बिना धर्म और काम के सिद्धि नहीं होती- **अर्थार्थं प्रवर्तते लोकः।**[१२] अर्थ

---

७. मार्क. पु. ३३/२० ८. वामन. पु. ७५/११ ९. मनु. ४/१३८
१०. वही, ४/२३९ ११. वही, ६/९२ १२. चा. सू. ७/२८

www.thearyasamaj.org

...र्थात् अभिलषित वस्तु। वस्तुतः इस जगत् में प्राणियों की सुख समृद्धि का मूल साधन अर्थ है-**सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्य मूलं अर्थः।।**[13] सुख का मूलाधार धर्म है और धर्म का मूल अर्थ है और इसी अर्थ पर व्यक्ति की आजीविका निर्भर है-**नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः**[14]। अर्थात् अर्थ का वास्तविक फल धर्म है और काम उसका गौण फल है। अर्थ को प्राप्त करके उसकी गणना धर्म में न करना एक मूर्खता है-

अर्थ इत्येव सर्वेषां कर्मणां व्यतिक्रमः।
न ह्यृतेऽर्थेन वर्तते धर्मकामाविति श्रुतिः।।

अर्थात् अर्थ से अभिप्राय धर्म और काम दोनों ही पुरुषार्थों से है। जिस प्रकार नदी की जलधारा से दोनों किनारों की भूमि सिंचित होकर स्वतः ही हरी-भरी रहती है, उसी प्रकार अर्थ भी हमारे दोनों पुरुषार्थों की उपस्थिति करता है। धर्म और काम पुरुषार्थों का प्राणभूत स्तम्भ ही अर्थ है। अर्थ के बिना धर्म एवं काम दोनों ही निष्क्रिय हैं जिस प्रकार बीज बिना बोये नहीं उगता उसी प्रकार तप एवं परिश्रम किये बिना अर्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

काम - ''काम्यते इति कामः'' पुरुषार्थों की श्रेणी में तृतीय अभीष्ट पुरुषार्थ काम है। काम भौतिक अभिक्रिया को देखकर हमारे अन्तःकरण की अभिव्यक्ति है। मन की मूल वासनाएं ही काम-प्रवृत्ति कहलाती हैं। सभी वासनाओं के मूल में काम निहित है। इसलिये वेद, पुराणों में काम को आदिदेव कहा गया है- **कामस्तदग्रे समवर्तत।**[15]

शिवपुराण के ८वें अध्याय से लेकर १२वें अध्याय तक काम को मैथुन-विषयक अर्थ में ही प्रयोग किया है। **काम संकल्प एव हि** कहकर यही सिद्ध किया है कि किसी भी संकल्प के मूल में विषयाशक्ति ही रहती है। आकर्षण ही काम है। काम की यह व्यावहारिक व्याख्या वात्स्यायन ने इस प्रकार दी है- **स्पर्शविशेषविषयत्वस्याभिमानिकसुखानुविद्धा फलवत्यर्थप्रतीतिः प्राधान्यात्कामः।**[16] अर्थात् चुम्बन, आलिंगन आदि स्पर्शसुख के साथ कपोल, स्तन, नितम्ब, आदि विशेष अंगों के साथ स्पर्श या आकर्षण से जो आनन्द प्राप्त होता है, वही काम है। विषय में वर्तमान इन्द्रियों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाले अपने-अपने विषय का सुखानुभव ही आनन्द है।

पाँचों इन्द्रियों का प्रधान उद्देश्य अपने विषय की योगलिप्सा में है। आँख, कान, नाक, त्वचा रसना द्वारा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द इन पाँचों के संयोग से प्राप्त आनन्द ही काम है। जो कि अनुभवजन्य है-

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ।।[17]

जिस प्रकार मतवाला हाथी केले के वृक्ष को मसल डालता है। ठीक वैसे ही यह कामदेव अबलाओं पर प्रहार करता है अर्थात् यह काम मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा ज्ञान को आवृत कर मनुष्य को मोहित करता है-

मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।[18]

इस जीव के बन्धन और मोक्ष का कारण मन

---

१३. चा. सू. १/१/२
१४. भा. पु. १/२/९
१५. अथर्व. १९/५२/१
१६. कामसूत्र, २.१२
१७. महा. वन. ३३/२
१८. गीता, ३/४०

www.thearyasamaj.org

को ही माना गया है। विषयों में आसक्त होने पर वह बन्धन का हेतु होता है और परमात्मा में अनुरक्त होने पर वही मोक्ष का कारण बन जाता है। वास्तव में विषयों से विरक्त मन वाला ही मोक्ष प्राप्ति में सक्षम होता है।

अत: काम की निवृत्ति के लिये प्रथमत: बाह्य इन्द्रियों को वश में करना चाहिये तदनन्तर ही मन पर प्रतिबन्ध हो सकता है। काम सर्वत्र व्यापक है। वह सर्वत्र विद्यमान होने के कारण प्रभावी है।

मोक्ष – पुरुषार्थ चतुष्टय में मनुष्य का अन्तिम अभीष्ट अंग मोक्ष है। मनुष्य के सभी कार्य इसी को आश्रय मान कर किये जाते हैं। इस पद को प्राप्त करके प्राणी (जीव) समस्त दुख-बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

''मुच्यते सर्वैः बन्धनैर्यत्र स: मोक्ष:'' अर्थात् जिस पद को पाकर जीव समस्त भौतिक, आध्यात्मिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है वह मोक्ष है। जो पुरुष सांसारिक बन्धनों के प्रति प्रेम रखता है उसे इस संसार में ''पुनरपि जननं पुनरपि मरणं'' उक्ति को सार्थक करते हुये विचरना पड़ता है। सांसारिक भोगलिप्सा को त्याग कर शम, दम आदि उत्तम गुणों को धारण करके मोक्षप्राप्तिहेतु प्रयत्नशील रहना चाहिए।

मोक्ष का मुख्य आधार धर्म है। अत: ''कूर्म पुराण में निरन्तर धर्म का पालन करते हुये धर्म को ही मुक्ति का उपाय बतलाया गया है''।[१९]

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:।।[२०]

सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् कर्त्तव्यकर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वर की शरण में आ जा, मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक मत कर। इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता का सम्पूर्ण १८वां अध्याय मोक्ष संन्यास-योग नाम पर वर्णित है।

निष्कर्ष – पुराणों में मोक्ष को परम पुरुषार्थ के रूप में बतलाया गया है तथा मोक्ष प्राप्ति-हेतु धर्म, कर्म, नित्य नैमित्य, पंच महायज्ञ आदि विभिन्न मार्गों को बतलाया गया है। फलत: पुराणों की यह चरम शिक्षा है कि निष्काम भावयुक्त भगवद्-भक्ति को करते हुये हमें दैवीय शक्ति पर विश्वास करना चाहिये। पुराण हमें व्यावहारिक दर्शन का उपदेश देता है तथा पुरुषार्थ चतुष्टय इस शिक्षा का आधार स्तम्भ हैं। अत: विवकेशील व्यक्ति को भगवत्प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ चतुष्टय का सहारा लेना चाहिये क्योंकि धर्म से विहीन अर्थ और अर्थ से विहीन काम व्यक्ति को निश्चित ही पतन की ओर ले जाते हैं।

–शोधार्थी, संस्कृत विभाग, एस०आर०टी० परिसर, हे०नं०ब०ग०
(केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, बादशाही-थौल, टिहरी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

---

१९. कूर्मपुराण, ११/१०६

२०. गीता, १८/६६

www.thearyasamaj.org

संस्थान-समाचार

दान –

श्री डी.पी. वासुदेवा, ५००
६ कूल रोड, जालन्धर।

श्री विजय कुमार शर्मा, ६०,०००/-
२३-ए, गाँधी नगर,
बस्ती नौ, जालन्धर।

श्रीमती बिन्दू सूद, ११००/-
सुपुत्री स्व. श्री मनमोहन सूद,
१०३४, बहादुरपुर गेट,
होशियारपुर।

श्रीमती इन्दू शर्मा, २०,०००/-
२३-ए, गाँधी नगर,
बस्ती नौ, जालन्धर।

प्रो. नरेन्द्र कुमार पाठक, २५००/-
बी-३१, न्यू गुरु तेगबहादुर नगर,
जालन्धर।

श्री नरेश सूद ११००/-
ABC Handloom
कोतवाली बाजार, गौरां गेट,
होशियारपुर।

श्री वी. आर. अग्निहोत्री, २१००/-
ईस्ट एण्ड इनक्लेव, दिल्ली-९२।

श्रीमती सरिता वैश, ५०००/-
C/o कै० सुधीर कुमार,
४०१, अमरनाथ टाऊन आफ
जे.आर वारसोवा,
अन्धेरी वैस्ट, बम्बई।

अध्यक्ष, आर्यसमाज, ६००/-
सिविल लाईन्ज़, धर्मशाला।

श्री. ए. के. गुप्ता, ११००/-
२६३, सिविल लाईन्ज़,
धर्मशाला।

डॉ. हरिवंश चंचल शर्मा ५०००/-
चेरिटेबल ट्रस्ट रजि. १९२७,
सैक्टर २२ बी, चण्डीगढ़।

श्री एन.सी. गुप्ता एडवोकेट एवं आरबीट्रेशन कंसलटैंट, ७०००/-
अमर कुटीर, सी १९२,
मधुवन, दिल्ली।

ऋषि-बोधोत्सव-

आर्यसमाज साधु आश्रम, होशियारपुर में २१-२-२०१७ को वी.वी.आर.आई. संस्थान में ऋषि-बोधोत्सव मनाया गया। जिसमें आर्यसमाज साधु आश्रम के सदस्य, वी.वी.आर. आई के कर्मिष्ठ तथा पंजाब यूनिवर्सिटी पटल के सभी कर्मिष्ठ तथा दोनों संस्थानों के छात्र तथा छात्राओं ने भाग लिया। हवन-यज्ञ करने के पश्चात् संस्थान संचालक इन्द्रदत्त उनियाल ने स्वामी दयानन्द जी के समाज सुधार को दृष्टि में रखकर अपने विचार प्रकट किये। अनन्तर पंजाब विश्वविद्यालय पटल के भूतपूर्व चेअरमैन, प्रो. (डॉ) प्रेमलाल शर्मा ने स्वामी दयानन्द जी द्वारा समाजसुधार तथा शिक्षाक्षेत्र में दिये योगदान पर प्रकाश डाला। अन्त में शान्तिपाठ के बाद प्रसाद-वितरण किया गया।

यह भी निश्चय किया गया कि दिनांक ६ मार्च २०१७ को संस्थान में दानवीर स्वर्गीय श्री धनीराम भल्ला जी की जयंती मनायी जाएगी। जिसके लिए मुख्यवक्ता पंजाब विश्वविद्यालय पटल के पूर्व अध्यक्ष प्रो. (डॉ) रघुवीर सिंह होंगे।

www.thearyasamaj.org

हवन-यज्ञ-

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। फरवरी 2017 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की अमृतवाणी का पाठ भी किया गया।

विविध-समाचार

शोक-समाचार-

संस्थान के भूतपूर्व कर्मिष्ठ तथा विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान की कार्यकारिणी के सदस्य श्री ओमप्रकाश जी सूद की धर्मपत्नी श्रीमती कृष्णा सूद का होशियारपुर में ३०-१-१७ को देहान्त हो गया। श्रीमती कृष्णा जी सरलहृदय, परोपकारी, मिलनसार व दानी स्वभाव की महिला थीं। आपके देहान्त से समाज व परिवार को जो हानि हुई है, उसकी पूर्ति होना संभव नहीं।

प्रभु से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में स्थान दे तथा उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा परिवार को इस दु:ख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

ॐ शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा

जिला मौरबी-३६३६५० (गुजरात)

ऋषि-बोधोत्सव

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी दिनांक १८ फरवरी से २४ फरवरी २०१७ तक ऋषिबोधोत्सव के उपलक्ष्य में **ऋग्वेद पारायण यज्ञ** का आयोजन किया गया। सम्पूर्ण कार्यक्रम की अध्यक्षता आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी (प्रधान डी.ए.वी. कालेज प्रबन्धकर्त्री समिति, आर्य प्रतिनिधि सभा एवं ट्रस्टी टंकारा ट्रस्ट) ने की। मुख्य-अतिथि-माननीय श्री विजयरूपाणी (मुख्यमन्त्री गुजरात) विशिष्ट अतिथि- श्री एच.आर. गन्धार (प्रशासक डी.ए.वी. यूनिवर्सिटी, जालन्धर), अध्यक्षता श्रद्धांजलि सभा- श्री सुरेश चन्द अग्रवाल (प्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा गुजरात) थे। इस यज्ञ के ब्रह्मा-आचार्य रामदेव जी रहे। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानीय तथा भारत के विभिन्न प्रांतों के विद्वान् भी उपस्थित थे।

www.thearyasamaj.org

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-०२-२०१७ को प्रकाशित।

www.thearyasamaj.org

प्रपत्र-४

१.	प्रकाशन का स्थान	....	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होश्यारपुर।
२.	मुद्रण स्थान	....	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान प्रैस, साधु-आश्रम, होश्यारपुर।
३.	प्रकाशन की अवधि	....	मासिक।
४.	मुद्रक का नाम	....	प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
	राष्ट्रीयता	....	भारतीय
	पता	....	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु-आश्रम, होश्यारपुर।
५.	प्रकाशक का नाम	....	प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
	राष्ट्रीयता	....	भारतीय
	पता	....	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु-आश्रम, होश्यारपुर।
६.	सम्पादक का नाम	....	प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
	राष्ट्रीयता	....	भारतीय
	पता	....	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु-आश्रम, होश्यारपुर।
७.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो इस समाचार-पत्र के मालिक या सांझेदार हैं या इसकी सारी पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार हैं।	....	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान-सभा (वी. वी. आर. आई. सोसाइटी), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

मैं, प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

ह०

इन्द्रदत्त उनियाल